भारतीय नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ

शैक्षिक मंथन संस्थान

ISSN 2581- 4133

वर्ष : 16 • अंक : 9 • पृष्ठ : 44 • जयपुर
www.shaikshikmanthan.com

चैत्र, विक्रम संवत् 2081
1 अप्रैल 2024 • ₹ 25/-

शैक्षिक मंथन

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

एक देश एक चुनाव

शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 16 अंक : 9 1 अप्रैल 2024

चैत्र, विक्रम संवत् 2081

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा
जी. लक्ष्मण
महेन्द्र कुमार

❖

सम्पादक

प्रो. शिवशरण कौशिक

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
प्रो. राजेश कुमार जांगिड़
प्रो. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. एस.पी. सिंह
प्रो. दीनदयाल गुप्ता
भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बसंत जिंदल

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

एक देश-एक चुनाव : विकसित भारत का आधार

❑ प्रो. नारायण लाल गुप्ता

एक कल्याणकारी लोकतंत्र की जिम्मेदारी नागरिकों को शासन का ऐसा ढाँचा देना है जो उसकी आवश्यकताओं और भविष्य के लिए अनुकूलतम हो। भारत को 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने का सपना यदि पूरा करना है तो छोटे-छोटे टुकड़ों में विकास की योजना के स्थान पर बड़े दृष्टिकोण के साथ तीव्र गति से चलना होगा। छोटे-छोटे यादृच्छिक उपायों के विपरीत बड़े रूपांतरणकारी उपाय में अल्पकालिक परेशानी हो सकती है, इन्हें लागू करना राजनीतिक रूप से जोखिम भरा और अलोकप्रिय हो सकता है, पर परिणामकारी विकास का मार्ग यही है।

4

अनुक्रम

3.	संपादकीय	- प्रो. शिवशरण कौशिक
7.	चुनाव और चुनावी सुधार	- श्वेता सिंह
12.	विकसित भारत के लिए जरूरी है	- प्रो. हरीश अरोड़ा
14.	एक देश एक चुनाव का इतिहास और वर्तमान.....	- डॉ. पुष्प दीप डागर
16.	एक देश, एक चुनाव के मायने	- डॉ. अनुपम चतुर्वेदी
18.	अनेक चरणों में होने वाले चुनाव और देश पर....	- अनिमेष पारीक
20.	एक देश एक चुनाव	- सुरेन्द्र चतुर्वेदी
22.	भारतीय संविधान में चुनाव	- डॉ. यशस्वी सिंह
25.	भारत में 'एक देश एक चुनाव' का इतिहास	- डॉ. दीक्षिता अजवानी
30.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 के प्रभावी	- प्रो. विजय वशिष्ठ
34.	धर्म व संविधान परस्पर विरोधी नहीं, अपितु पूरक हैं	- प्रणय कुमार
38.	गीता में ईश्वर अस्तित्व एवं मानव स्वतन्त्रता	- डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
42.	भारतीय संस्कृति के परम आदर्श : श्रीराम	- उमेश कुमार चौरसिया

The Rupee Toll of Frequent Polls : India's Electoral Finance Conundrum

❑ **Amit Halder**

Analysts vocals about ONOE would lead to tremendous institutional cost savings by avoiding repeated expenditures on personnel, equipment, security, campaigning, and advertising for separate state and national polls. It is estimated that ONOE could save over 40 billion rupees (US$500 million) that could be reallocated to development programs.

28

संपादकीय

प्रो. शिवशरण कौशिक
संपादक

भारत विश्व का सर्वाधिक मतदाताओं वाला ऐसा लोकतांत्रिक देश है जिसमें प्रत्येक नागरिक को उसकी जाति, धर्म, पंथ, वर्ग, लिंग या किसी अन्य प्रकार की विविधता की उपस्थिति में भी समान रूप से मतदान करने का अधिकार प्राप्त है। 26 जनवरी 1950 को भारत गणराज्य का संविधान लागू होते ही केंद्र और राज्यों की सरकारों का गठन नागरिकों के वयस्क मताधिकार के उपयोग से ही होने लगा; तभी से सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार भारतीय लोकतंत्र की शासकीय शक्ति का आधार बन गया। बहुमत के आधार पर सरकारों का गठन किए जाने पर भी मजबूत लोकतांत्रिक व्यवस्था के कारण विपक्ष में मतदान करने वाले मतदाताओं तथा सत्ता के विपक्ष में जनता के हितों की रक्षा में आवाज उठाने वाले जनप्रतिनिधियों का भी महत्त्व कम नहीं रहा। भारत की लोकतांत्रिक प्रणाली का यही जनमंगलकारी स्वरूप आज पूरे विश्व के अन्य देशों के लिए अनुकरणीय बना हुआ है।

शासन में रहने वाली सरकारों का यह परम दायित्व है कि वह संसद, विधानसभा, नगर निकाय और पंचायतीराज जैसे सभी चुनावों में नियमितता, निष्पक्षता और मितव्ययता के साथ भयमुक्त वातावरण में चुनाव संपन्न कराने का प्रबंध करें। किसी भी स्वस्थ और सशक्त लोकतंत्र में एक निश्चित अवधि के बाद जनता या आम मतदाता को सत्ता में रहने वाली सरकार के द्वारा किए गए निर्णयों तथा योजनाओं के लाभ-हानि का मूल्यांकन करने का अधिकार ही उसे सच्चा लोकतंत्र बनाता है। जनता के द्वारा चुने हुए जनप्रतिनिधि जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप कार्य करें, यही जनता का शासन है, यही लोकतंत्र है। कई बार चुने हुए प्रतिनिधि जनता की आवश्यकताओं तथा राज्य और राष्ट्र की अपेक्षाओं के अनुरूप कार्य नहीं करते; अपितु कभी-कभी तो इन सब के विपरीत आचरण भी करते हैं। इसीलिए हमारे संविधान ने निश्चित समयावधि के पश्चात चुनाव कराने और नागरिक-मतदाता को एक बार पुनः अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया है।

लोकतांत्रिक दलों और सरकारों की आचार संहिता के प्रति अति संवेदनशीलता प्रकट करते हुए जनसंघ के संस्थापक सदस्य पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने तत्कालीन अंग्रेजी साप्ताहिक 'आर्गेनाइजर' में 'पोलिटिकल डायरी' नामक स्तम्भ में गम्भीर टिप्पणी की है। वे लिखते हैं कि ''जनतंत्र में विश्वास करने वाले सभी राजनीतिक दलों और सरकार को विशिष्ट प्रश्नों के बारे में जनता के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति संबंधी एक समान संहिता मान्य करनी चाहिए। सरकार को प्रस्तावों और आवेदनों के प्रति अधिक उत्तरदायी बनना चाहिए। यदि सरकार गोहत्या पर प्रतिबंध लगाने की माँग करने वाले दो करोड़ से भी अधिक लोगों के हस्ताक्षरों को रद्दी की टोकरी में फेंक देती है, किंतु उसी प्रश्न पर सत्याग्रह के सामने झुक जाती है, तो इसे सरकार की जनतांत्रिक भावना का परिचायक नहीं कहा जा सकता।'' यह प्रतिक्रिया उन्होंने तत्कालीन सरकार (सन् 1961) के शासन सम्बन्धी दोहरे मानदंड अपनाये जाने पर की थी। इसी लेख में उन्होंने राजनीतिक दलों और जनप्रतिनिधियों के व्यक्तिगत हितों पर भी टिप्पणी की थी। यहाँ उन्होंने डॉ. राधाकृष्णन के एक कथन को भी उद्धृत किया है। डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं ''राजनीति अंततः साध्य तक पहुँचाने का एक साधन है। यह ऐसी व्यवस्था का निरूपण करती है, जिसके द्वारा सबको सामाजिक और आर्थिक न्याय मिले। यदि जनतंत्र केवल यहीं तक अपनी गतिविधियाँ सीमित रखता है कि निर्वाचित प्रतिनिधि केवल सत्ता की होड़ में लगे रहें और पद के पीछे दौड़ते रहें, तथा राज्य के कार्यों को इस प्रकार छोड़ दें कि वह अस्त-व्यस्त हो जाए, तो वह जनतंत्र नाम के लिए भी अच्छा नहीं।'' पंडित दीनदयाल उपाध्याय जिस राजनीतिक शुचिता के लिए सदैव चिन्तित रहे, वे स्थितियाँ और सिद्धान्त भारत की वर्तमान परिवर्तनकारी राजनीति में दिखाई देने लगे हैं। कुछ बड़े संकल्प और इच्छाशक्ति भारत के वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व ने अपने निर्णयों और उनकी क्रियान्विति में देश के सामने स्पष्टता से रखे हैं। अब लगने लगा है कि यह समय स्वातंत्र्य भारत की राजनीति में शुष्क पड़ते राष्ट्रवाद के पुनरभ्युदय का समय है। वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में मतदाता ने भी 'राष्ट्र प्रथम' को दृष्टिगत रखते हुए अपना मतदान करने की दृढ़ता दिखाई है। भारत की राजनीति का साध्य पुनः भारत के 'स्वत्व' की ओर उन्मुख हुआ है।

भारत-गणराज्य की लोकतांत्रिक समृद्धि व सामर्थ्य में वृद्धि के क्रम में भारत सरकार ने अभी हाल ही में **एक देश एक चुनाव** के लिए भारत के पूर्व राष्ट्रपति माननीय रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में समिति गठित की है और समिति ने समूचे देश के जनप्रतिनिधियों, समाजसेवियों, अर्थशास्त्रियों, नागरिकों, शिक्षकों, सामान्य मतदाता आदि से उनके विचार जानकर रिपोर्ट प्रस्तुत की है। यह सर्वविदित है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में, राज्यों में प्रतिवर्ष बार-बार होने वाले चुनावों के कारण सरकारों पर अत्यधिक आर्थिक भार पड़ता है और जनहित का पैसा चुनाव खर्च में चला जाता है। राजनीतिक दलों को भी अलग-अलग और बार-बार होने वाले चुनावों के कारण अनेक प्रकार से आर्थिक संसाधन जुटाने पड़ते हैं जो कभी-कभी भ्रष्टाचार की श्रेणी में भी आते हैं। साथ ही बार-बार लगने वाली चुनावी आचार संहिता के कारण विकास की योजनाएँ विलंबित होती हैं और कभी-कभी निष्प्रभावी भी हो जाती हैं। इसलिए भावी उन्नत भारत और समर्थ भारत के निर्माण में **एक देश एक चुनाव** के संकल्प के लिए भारत सरकार का हार्दिक अभिनन्दन! ❑

एक देश-एक चुनाव : विकसित भारत का आधार

प्रो. नारायण लाल गुप्ता
भौतिक शास्त्र,
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान

चुनाव लोकतंत्र का आधार है, लोक की शक्ति है, उसकी संजीवनी है। भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में चुनाव विराट घटना है, बड़ा उत्सव है। निष्पक्ष और नियमित अंतराल पर चुनाव स्वस्थ लोकतंत्र की आवश्यकता है। पर चुनाव कितने हों, कब-कब हों, उत्तम शासन और समाज व्यवस्था के लिए इस प्रश्न का भी समुचित उत्तर लोकतंत्र में अपेक्षित है। किसी भौगोलिक क्षेत्र में शासन, प्रशासन, नेता और सामान्य मतदाता कम-अधिक मात्रा में निरंतर चुनावी मानसिकता में रहे, यह किसी देश-समाज के चलने की दिशा होना ठीक नहीं है।

हमने कईयों ने जब से आँखें खोली; सोचना-समझना शुरू किया तब से भारत को लगातार चुनावी मोड में देखा है। लोकसभा के एक पंचवर्षीय कार्यकाल के दौरान देश में हर साल लगभग 5 से 7 राज्यों के विधानसभा के चुनाव होते हैं। यदि इसमें पंचायत और शहरी स्थानीय निकायों के चुनाव, मध्यावधि चुनाव आदि जोड़ दिए जाए, तो किसी भी वर्ष में किसी क्षेत्र में होने वाले चुनाव की संख्या काफी हो जाती है। चुनाव के ये निरंतर चक्र, चुनाव वाले क्षेत्रों में प्रशासनिक, शैक्षिक, सामाजिक और विकासात्मक गतिविधियों पर बहुत नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। एक देश-एक चुनाव इस संकट का एक संभावित समाधान हो सकता है।

हाल ही में एक देश एक चुनाव को लेकर पूर्व राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में बनी समिति ने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति जी को सौंपी है। पूर्व में भी कई प्रमुख नेताओं और विशेषज्ञों ने एक देश एक चुनाव के विचार का समर्थन किया है। पूर्व में कई समितियों ने इस मामले की विस्तार से जाँच की है जिनमें प्रमुख रूप से 1999 में भारत के विधि आयोग की चुनावी कानून के सुधार पर 170वीं रिपोर्ट, 2015 में विधि और न्याय पर संसदीय स्थाई समिति की 79वीं रिपोर्ट, 2017 में नीति आयोग की रिपोर्ट और 2018 में भारत के विधि आयोग की ड्राफ्ट रिपोर्ट प्रमुख है।

इतिहास

एक देश एक चुनाव की अवधारणा नयी नहीं है। 1951 से 1967 के मध्य लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ ही हुए थे। पर 1968 और 1969 में कुछ विधानसभाओं को समय से पहले भंग किए जाने के कारण यह परंपरा टूटी। 1970 में चौथी लोकसभा को समय से पहले ही भंग कर दिया गया और नए चुनाव कराए गए।

फिर पांचवी लोकसभा का कार्यकाल आपातकाल संबंधी अनुच्छेद 352 का उपयोग करते हुए 1977 तक बढ़ा दिया गया। तब से लोकसभा और राज्य विधानसभाओं को समय पूर्व भंग करने के कई उदाहरण बने, और एक देश एक चुनाव इतिहास की बात बन कर रह गई।

एक देश एक चुनाव क्यों ?

आदर्श आचार संहिता के कारण कल्याण और विकास संबंधी गतिविधियों पर प्रभाव : जिस क्षेत्र में चुनाव घोषित किए जाते हैं वहाँ यह प्रक्रिया संपन्न होने तक आदर्श आचार संहिता के लागू रहने के कारण रूटिन प्रशासनिक गतिविधियों को छोड़कर विकास कार्यक्रम, कल्याणकारी योजनाएँ, पूंजीगत परियोजनाएँ आदि काफी हद तक बंद रहते हैं। नीति आयोग की रिपोर्ट से पता चलता है कि देश के किसी न किसी क्षेत्र में प्रतिवर्ष चार महीने या अधिक आदर्श आचार संहिता लागू रहती है।

सरकार और राजनीतिक दलों द्वारा किया जाने वाला भारी आवर्ती व्यय : एक बार लोकसभा चुनाव करवाने के लिए सरकार को लगभग 5000 करोड़ रूपया तथा राजस्थान जैसे एक राज्य का विधानसभा चुनाव करवाने में लगभग 300 करोड़ रूपया खर्च करना पड़ता है। जहाँ तक उम्मीदवारों और पार्टियों द्वारा खर्च किए गए धन की बात है तो 2019 के लोकसभा चुनाव में लगभग 60000 करोड़ रुपए इनके द्वारा खर्च किए गए। क्योंकि किसी न किसी राज्य विधानसभा में अक्सर चुनाव होते रहते हैं अत: राजनीतिक दल विशेष रूप से धन के निरंतर प्रवाह और एकत्रीकरण को लेकर चिंतित रहते हैं, जो अंतत: भ्रष्टाचार और काले धन को पनपने में सहायक होता है।

लंबे समय तक सरकारी कर्मचारियों-अधिकारियों और सुरक्षा बलों की नियुक्ति : चुनाव एक विशाल, जटिल और समय लेने वाली गतिविधि है, जिसे सुचारू, शांतिपूर्ण और निष्पक्ष

रूप से संपन्न करने के लिए अन्य संसाधनों के साथ-साथ बड़ी संख्या में सरकारी अधिकारियों-कर्मचारियों और पुलिस-सशस्त्र बलों की आवश्यकता होती है। अनुमान बताते हैं कि प्रति पोलिंग बूथ के लिए लगभग 10.75 सरकारी कर्मियों की आवश्यकता होती है। 2019 के लोकसभा चुनाव में एक करोड़ से अधिक कार्मिक कर्तव्य पालन में लगे थे और उनमें से कई लंबे समय तक इस प्रक्रिया से जुड़े रहे। इससे न केवल राष्ट्रीय सुरक्षा और कानून प्रवर्तन के प्रयास प्रभावित होते हैं बल्कि सामान्य जन से जुड़े सरकारी कामकाज में भी बड़ी मात्रा में बाधा उत्पन्न होती है।

एक कल्याणकारी लोकतंत्र की जिम्मेदारी नागरिकों को शासन का ऐसा ढाँचा देना है जो उसकी आवश्यकताओं और भविष्य के लिए अनुकूलतम हो। भारत को 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने का सपना यदि पूरा करना है तो छोटे-छोटे टुकड़ों में विकास की योजना के स्थान पर बड़े दृष्टिकोण के साथ तीव्र गति से चलना होगा। छोटे-छोटे यादृच्छिक उपायों के विपरीत बड़े रूपांतरणकारी उपाय में अल्पकालिक परेशानी हो सकती है, इन्हें लागू करना राजनीतिक रूप से जोखिम भरा और अलोकप्रिय हो सकता है, पर परिणामकारी विकास का मार्ग यही है।

नीति निर्माण और शासन पर प्रभाव : निरंतर चुनावों का दुष्प्रभाव यह होता है कि सरकारी और राजनीतिक दल सतत अभियान मोड में बने रहते हैं। चुनाव संबंधी मजबूरियों से नीति निर्माण का फोकस बदलकर लोक लुभावन, अल्पकालिक और राजनीतिक रूप से सुरक्षित उपायों पर हो जाता है। इससे सरकार की जोखिम लेने की क्षमताएँ प्रभावित होती हैं और वह दीर्घकालिक परिवर्तनकारी उपायों पर ध्यान केंद्रित करने के स्थान पर सुरक्षित यथास्थितिवादी दृष्टिकोण का विकल्प चुनने के लिए बाध्य होती है।

एक देश एक चुनाव को नकारने वाले और आलोचक क्या कहते हैं ?

इसके विरोध में जो राजनीतिक नेता और आलोचक तर्क देते हैं, उनमें प्रमुख हैं -

1. एक देश एक चुनाव का विचार राजनीति से प्रेरित है। यह संघवाद के सिद्धांतों को कमजोर कर सकते हैं तथा यह राज्य के चुनावों में भी राष्ट्रीय मुद्दों पर वोट करने के लिए मतदाताओं को प्रभावित कर सकता है। इस तर्क की

प्राथमिक परिकल्पना यह है कि विधानसभा और लोकसभा के एक साथ चुनाव होने की स्थिति में मतदान के विकल्पों के मध्य अंतर करने के लिए भारतीय मतदाता परिपक्व नहीं है। किंतु यह भारत की सुदृढ़ लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदान व्यवहार की जटिलता का अति सामान्यीकरण है। चुनाव अलग-अलग हो अथवा एक साथ, मतदाताओं का जनादेश कई मापदंडों यथा - दलों की संगठनात्मक ताकत और उपस्थिति, नेताओं के बारे में धारणा, जाति एवं अन्य सामाजिक कारक, विकास और कल्याण संबंधी एजेंडा, स्थानीय और राष्ट्रीय मुद्दे आदि का प्रतिबिंब होता है, न कि केवल टाइमिंग का। उदाहरण के लिए राजस्थान में 2018 विधानसभा चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिला किंतु मात्र कुछ महीने बाद हुए लोकसभा चुनाव में राज्य की एक भी लोकसभा सीट कांग्रेस को नहीं मिली।

2. इसे व्यावहारिक रूप से जमीन पर नहीं उतारा जा सकता। इस संबंध में आलोचकों के तर्क हैं कि विधानसभाओं और लोकसभाओं के कार्यकाल को पहली बार कैसे समकालीन बनाया जाएगा; क्या इसके लिए कुछ राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को बढ़ाना या कम करना संभव होगा; वित्त, सुरक्षा और जनशक्ति संसाधन की बहुत बड़े पैमाने पर आवश्यकता को देखते हुए क्या एक साथ चुनाव कराना व्यावहारिक रूप से संभव होगा; आदि। व्यावहारिकता संबंधी विविध प्रश्नों को भिन्न-भिन्न समितियों द्वारा समय-समय पर अध्ययन किया गया है और कुछ व्यवहार्य मॉडल भी प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें नीति आयोग का प्रस्ताव और भारत के चुनाव आयोग और विधि आयोग के प्रस्ताव प्रमुख हैं।

इन रिपोर्ट्स की पृष्ठभूमि के साथ-साथ रामनाथ कोविंद समिति ने व्यापक जन सुझाव और विविध राजनीतिक दलों से चर्चा के उपरांत 18000 से ज्यादा पन्नों की रिपोर्ट में महत्त्वपूर्ण समाधान प्रस्तुत किए हैं। इनमें पहले समकालिक चुनाव के लिए सभी राज्य विधानसभाओं का कार्यकाल अगले लोकसभा चुनाव तक समाप्त होने वाली अवधि तक करना, त्रिशंकु सदन या अविश्वास प्रस्ताव की स्थिति में शेष 5 साल के कार्यकाल के लिए नए सिरे से चुनाव कराना, आवश्यक संविधान संशोधन करना, एकल मतदाता सूची तैयार करना, लॉजिस्टिक एवं जनसंसाधन व्यवस्थाएँ और व्यय अनुमान विकसित करना और इस संबंध में व्यापक योजना बनाना आदि प्रमुख हैं। उल्लेखनीय है कि दक्षिण अफ्रीका, स्वीडन, जर्मनी और ब्रिटेन जैसे देशों में एक देश एक चुनाव वर्षों से सफलतापूर्वक संपन्न किये जा रहे हैं।

हमने पहले भी कर दिखाया है !

स्वतंत्र भारत के पहले आम चुनाव 1951-52 में हुए थे। इसके मात्र एक वर्ष पहले ही 1950 में भारत के निर्वाचन आयोग की स्थापना हुई थी। पहले आम चुनाव में लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभाओं, विधान परिषदों आदि के चुनाव एक साथ करवाने का जिम्मा निर्वाचन आयोग को सौंपा गया था। भारत नया-नया स्वतंत्र हुआ था, उसके पास ना इस संबंध में अनुभव था, ना दूरदराज के कोनों तक यातायात एवं अन्य आधारभूत संरचना थी, ना ही पर्याप्त संसाधन थे, संचार आदि तकनीकी सुविधा भी बहुत विकसित नहीं थी। इन सब सीमा बंधनों और चुनौतियों के बावजूद भारत ने दुनिया की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में से एक को कुशलतापूर्वक संपन्न कराया था।

एक कल्याणकारी लोकतंत्र की जिम्मेदारी नागरिकों को शासन का ऐसा ढाँचा देना है जो उसकी आवश्यकताओं और भविष्य के लिए अनुकूलतम हो। भारत को 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने का सपना यदि पूरा करना है तो छोटे-छोटे टुकड़ों में विकास की योजना के स्थान पर बड़े दृष्टिकोण के साथ तीव्र गति से चलना होगा। छोटे-छोटे यादृच्छिक उपायों के विपरीत बड़े रूपांतरणकारी उपाय में अल्पकालिक परेशानी हो सकती है, इन्हें लागू करना राजनीतिक रूप से जोखिम भरा और अलोकप्रिय हो सकता है, पर परिणामकारी विकास का मार्ग यही है। एक देश एक चुनाव ऐसा ही रूपांतरणकारी मार्ग है, कुछ समय के लिए हमें परिवर्तन असहज और मुश्किल लग सकता है, परंतु एक भारत-श्रेष्ठ भारत, दुनिया को नेतृत्व देने वाला भारत बनाने की हमारी आकांक्षाएँ साकार करने में यह बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। ❑

चुनाव और चुनावी सुधार

श्वेता सिंह
नई दिल्ली

हमारे संस्थापकों ने राष्ट्रों के समुदाय में भारत के लिए एक उचित और सम्मानित स्थान की परिकल्पना की थी और उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ हमारे संविधान में समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के ऊँचे सिद्धांतों को स्थापित करके इसे हासिल करने की कोशिश की थी। संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली को इसलिए अपनाया गया क्योंकि यह हमारी प्रतिभा, परंपराओं और स्वभाव के लिए सबसे उपयुक्त मानी गई थी। हमारी राजव्यवस्था में संसद की सर्वोच्चता और अधिकार और सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, स्वतंत्र, निष्पक्ष और आवधिक चुनाव, वास्तविक स्वामी-जनता के प्रति राजनीतिक नेतृत्व की जवाबदेही जैसे कई अन्य मूल्यों को हमारे संविधान में सावधानीपूर्वक विस्तार से दर्ज किया गया है।

हमारी संसद जनता की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था है। इसका प्राथमिक कार्य लोगों की उभरती जरूरतों और आकांक्षाओं के साथ निकटतम संपर्क में रहना और उनके आग्रह, आशाओं और यहाँ तक कि आज की शिकायतों और समस्याओं को आवाज देना है। इस व्यवस्था में प्रजा ही राजा है। जनता ही असली मालिक है। इसलिए, लोगों को स्वयं शासित होने का विशेषाधिकार प्राप्त है - अपनी पसंद के शासकों द्वारा। इस उद्देश्य के लिए, वे समय-समय पर होने वाले चुनावों के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं, जो दुनिया भर में सभी लोकतंत्रों की सामान्य विशेषताएँ हैं। यह चुनाव के साधन के माध्यम से है कि सहमति और प्रतिनिधित्व की धारणाओं को विधानसभाओं में जीती गई सीटों में डाले गए वोटों के रूपांतरण द्वारा वास्तविकता में अनूदित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, चुनाव देश की मानसिक स्थिति का पैमाना होते हैं। वे न केवल लोकतंत्र को कायम रखते हैं बल्कि उसे जीवंत भी बनाते हैं। इसलिए, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना किसी भी लोकतंत्र में अपरिहार्य है।

आज हमारी चुनावी प्रक्रिया अनेक गंभीर बीमारियों से ग्रस्त है। हालात ऐसे हो गए हैं कि आम आदमी में इस अभ्यास के प्रति एक प्रकार की घृणा या उदासीन रवैया विकसित हो गया है। उनका मानना है कि चुनाव न तो स्वतंत्र हैं और न ही निष्पक्ष; यह बंदूकें और गुंडे हैं जो जनता पर शासन करते हैं। चुनावों के दौरान मतपेटियाँ छीन ली जाती हैं, बूथों पर कब्जा कर लिया जाता है और छूट के साथ फर्जी मतदान का सहारा लिया जाता है। कुल मतों का केवल 25 या 30 प्रतिशत

वोट पाने वाले उम्मीदवारों को विधायिका के लिए निर्वाचित घोषित किया जाता है। यह सब हमारी चुनावी प्रक्रिया की साख पर सवाल उठाने की क्षमता रखता है और इसलिए इस मोर्चे पर कुछ गंभीर पुनर्विचार की आवश्यकता है। लोकतंत्र की इमारत जिन तीन स्तंभों पर खड़ी है वे हैं निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव, विचार, अभिव्यक्ति और प्रेस की स्वतंत्रता और न्यायपालिका की स्वतंत्रता। आधुनिक लोकतंत्रों में, चुनावी प्रणाली सत्ता के उपकरणों को तैयार करने के लिए संस्थागत कार्यशाला प्रदान करती है और लोकतांत्रिक प्रक्रिया का सार बनाती है। क्योंकि यह चुनावी प्रणाली है जो हमारे निर्वाचित प्रतिनिधियों के आवधिक चयन और व्यवस्थित प्रतिस्थापन, सरकार के रिकॉर्ड पर लोकप्रिय फैसले की अभिव्यक्ति और मतदाताओं के प्रति प्राधिकारियों की जवाबदेही को संस्थागत बनाने का प्रावधान करती है। इसलिए चुनाव कानूनों को हमारी राजनीतिक व्यवस्था की गंगोत्री कहा जा सकता है, क्योंकि राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था की जड़ें चुनाव में हैं। यदि हमने गंगोत्री को साफ नहीं किया और इसमें सभी प्रकार की बुराइयों को आने दिया, तो राजनीतिक व्यवस्था भी धीरे-धीरे प्रदूषित हो जाएगी। इस प्रकार, समय-समय पर यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव हों और हमारे संसदीय लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए चुनावी मशीनरी और चुनावी प्रक्रियाएँ ठीक से काम करें, राजनीतिक दलों, वकीलों, न्यायविदों, शिक्षाविदों, समितियों, आयोगों और विभिन्न लोगों द्वारा कई सुधार और सुझाव सामने रखे गए हैं।

भारत में वयस्क मताधिकार के आधार पर हुए पहले आम चुनाव के बाद से, हमारी चुनावी प्रणाली की सुदृढ़ता या प्रभावकारिता के बारे में संदेह व्यक्त किया गया है। पिछले लगभग 75 वर्षों के दौरान, संसद के अंदर और बाहर दोनों जगह विचार व्यक्त किए गए हैं, जो वर्तमान प्रणाली और प्रक्रिया की विभिन्न अपर्याप्तताओं और कमियों को उजागर करते हैं। सिस्टम में खामियों को दूर करने और सुधार लाने के लिए समय-समय पर सुझाव दिए जाते रहे हैं, जिनमें इस उद्देश्य के लिए गठित आयोग और समितियां भी शामिल हैं।

हमारा विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। हम वैध रूप से इस तथ्य पर गर्व कर सकते हैं कि यद्यपि शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र कई पड़ोसी देशों और अन्य जगहों पर विफल हो गया है, भारत में यह लगातार बढ़ रहा है और फल-फूल रहा है। इसका श्रेय स्वतंत्र और निष्पक्ष आम चुनाव कराने की हमारी क्षमता को भी जाता है, जिनमें से प्रत्येक को शायद मानव इतिहास में अब तक आयोजित सबसे बड़ी चुनाव प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया जा सकता है। चुनावी मशीनरी को 28 राज्यों और 8 केंद्र शासित प्रदेशों में फैले 1.4 अरब से अधिक लोगों के मतदाताओं के लिए योजना बनानी होगी। इसके लिए लगभग 7 लाख मतदान केंद्र और लगभग 40 लाख लोगों की सेना की आवश्यकता होती है। इतने बड़े पैमाने पर चुनाव कराने के लिए उत्तर में ऊँचे और बर्फ से ढके पहाड़ों, दक्षिण में बिखरे हुए छोटे द्वीपों, पूर्व में घने जंगलों और पश्चिम में दलदली और रेगिस्तानी भूमि के विशाल इलाकों में जनशक्ति की तैनाती और निवेश की आवश्यकता होती है। यह वास्तव में इतने वर्षों में उल्लेखनीय ढंग से आयोजित किया गया एक मैराथन अभ्यास है।

संसदीय राजनीति में, चुनावों को लोकतंत्र के त्योहार के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसलिए, उन्हें स्वतंत्र, निष्पक्ष और निष्पक्ष तरीके से संचालित किया जाना चाहिए ताकि संसद और राज्य विधानमंडलों की संस्था के लिए अपने प्रतिनिधियों का चयन करने में लोगों की इच्छा वास्तव में प्रतिबिंबित हो। लोगों के मन में, चाहे वे काउंटी के अंदर रहते हों या बाहर, चुनावी प्रक्रिया की निष्पक्षता के बारे में कोई संदेह नहीं होना चाहिए। केवल इसी तरह से हम अपने संसदीय लोकतंत्र को और मजबूत और जीवंत बना सकते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने 16 आम चुनाव देखे हैं। प्रत्येक आम चुनाव को एक अद्वितीय लोकतांत्रिक अभ्यास के रूप में सराहा गया है। संविधान ही देश के सभी नागरिकों को चुनाव करने और चुने जाने के अधिकार की गारंटी देता है। भारत में निष्पक्ष चुनाव की व्यवस्था भारत के संविधान के भाग और 1950 और 1951 के लोक प्रतिनिधित्व अधिनियमों में सन्निहित है। संविधान और उपर्युक्त अधिनियमों में किए गए विभिन्न प्रावधानों से पता चलता है कि संविधान-निर्माता इसके लिए कितने चिंतित थे। वे नागरिकों के इस राजनीतिक अधिकार की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध थे। यही कारण है कि हमारे देश में चुनाव के विषय को संवैधानिक मान्यता दी गयी है। भारत में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए शीर्ष स्तर पर हमारे चुनावी निकाय की स्वतंत्रता और तटस्थता के लिए वैधानिक प्रावधान किए गए हैं।

पहली बार, सभी कोणों से चुनाव सुधार के सवाल की जाँच करने के लिए चुनाव कानून में संशोधन का सुझाव देने के लिए 1970 में एक संसदीय समिति का गठन किया गया था। लेकिन दिसंबर 1970 में लोकसभा भंग होने के साथ ही इस समिति का जीवन भी समाप्त हो गया। जब 1971 में, एक नई लोकसभा अस्तित्व में आई, तो अन्य बातों के अलावा, चुनाव सुधारों के प्रश्न पर चर्चा करने के लिए जुलाई 1971 में श्री जगन्नाथ राव की अध्यक्षता में 21 सदस्यीय समिति का गठन किया गया। इसमें अन्य लोगों के

अलावा तत्कालीन कानून मंत्री श्री एच.आर. गोखले भी शामिल थे। लगभग एक वर्ष के श्रम के बाद, इस समिति ने संसद को दो खंडों में एक रिपोर्ट सौंपी जिसमें कई मूल्यवान सुझाव दिए गए। बाद में, सिटीजन्स फॉर डेमोक्रेसी की ओर से, न्यायमूर्ति तारकुंडे की अध्यक्षता में चुनाव सुधार पर छह सदस्यीय समिति अगस्त 1974 में अस्तित्व में आई, और कई संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ चर्चा करने के बाद, इसने कई सिफारिशों से निपटने के लिए एक व्यापक सेट तैयार किया। चुनाव में धनबल का प्रयोग, सरकारी सत्ता और मशीनरी का दुरुपयोग, प्रतिनिधित्व की वैकल्पिक व्यवस्था, चुनावी विवादों का निपटारा आदि बिंदु शामिल हैं।

जब जनता सरकार सत्ता में थी, तब सरकारी स्तर पर इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया गया था, लेकिन यह निर्णय लिया गया था कि आवश्यक कानून विपक्ष के परामर्श के बाद ही शुरू किया जाएगा। 1980 के बाद, कांग्रेस (आई) सरकार ने उपर्युक्त सभी सिफारिशों पर विचार करने के लिए एक कैबिनेट उप-समिति का भी गठन किया। केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के गठन के साथ ही एक बार फिर चुनाव सुधारों की चर्चा जोरों पर है। 9 जनवरी, 1990 को, राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने चुनाव सुधारों पर चर्चा करने के लिए नई दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन आयोजित किया और चुनाव प्रणाली की समीक्षा करने और चुनाव सुधार प्रस्तावों को अंतिम रूप देने के लिए सांसदों और विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया। उसी वर्ष, नेशनल फ्रंट सरकार ने, एक दुर्लभ संकेत में, एक निजी सदस्य के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, जिसमें चुनावों में धन और बाहुबल के प्रभाव को रोकने के लिए तत्काल चुनाव सुधारों की माँग की गई थी। यह प्रस्ताव श्री एल.के. आडवानी द्वारा प्रस्तुत किया गया। लोकसभा में आडवाणी ने इस प्रकार पढ़ा - ''इस सदन की राय है कि नौवें आम चुनावों की पृष्ठभूमि में, चुनाव सुधार तत्काल किए जाने चाहिए, विशेष रूप से धन बल और बाहुबल के प्रभाव को रोकने के लिए, और यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस सबसे बड़े लोकतंत्र में भविष्य में चुनाव पूरी तरह से स्वतंत्र और निष्पक्ष हों।'+

इस प्रस्ताव पर सदन में रिकॉर्ड समय तक बहस हुई जिसमें पचास से अधिक सदस्यों और मंत्रियों ने भाग लिया। बहस के दौरान विभिन्न पहलुओं जैसे चुनावों में इस्तेमाल होने वाली धन शक्ति, चुनावों की सार्वजनिक फंडिंग, लोगों को पहचान पत्र जारी करना, निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन, चुनाव आयोग का बहु-सदस्यीय आयोग होना, आचार संहिता का पालन करना आदि पर चर्चा की गई। इनमें से कुछ उपायों पर इस प्रकार चर्चा की गई है -

चुनाव की प्रणालियों में परिवर्तन

हमने चुनाव की प्रणाली को अपनाया है जिसे 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' या साधारण बहुमत प्रणाली कहा जाता है - लोकसभा और राज्यों की विधान सभाओं दोनों के लिए। हालाँकि, भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति, राज्यसभा और राज्यों में विधान परिषदों के चुनावों के लिए, अपनाई गई चुनाव प्रणाली आनुपातिक प्रतिनिधित्व की है। पिछले सात दशकों के दौरान, लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव साधारण बहुमत प्रणाली के अनुसार आयोजित किए गए हैं और कई अवसरों पर इस प्रणाली के तहत हुए चुनावों के परिणामस्वरूप केंद्र और राज्यों दोनों में सरकारों का शांतिपूर्ण और व्यवस्थित परिवर्तन हुआ है। हालाँकि, पार्टियों द्वारा प्राप्त वोटों और विधानमंडलों में उनके द्वारा जीती गई सीटों की संख्या के बीच असंतुलन को देखते हुए, वर्तमान साधारण बहुमत प्रणाली से किसी प्रकार के आनुपातिक प्रतिनिधित्व की ओर बदलाव पर शायद विचार किया जा सकता है, अर्थात् सूची प्रणाली या चुनाव की मिश्रित प्रणाली, ताकि असंतुलन को खत्म किया जा सके। पश्चिम जर्मनी और जापान जैसे देशों में प्रचलित इस मॉडल में आधे सदस्यों को बहुमत प्रणाली द्वारा और आधे को आनुपातिक प्रतिनिधित्व की सूची प्रणाली के माध्यम से लौटाने का प्रावधान है ताकि सीटों को प्रत्येक पार्टी द्वारा प्राप्त वोटों की संख्या के अनुपात में विभाजित किया जा सके।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व की सूची प्रणाली के अपने गुण और अवगुण हैं। लेकिन यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या यह व्यवस्था हमारी परिस्थितियों के अनुकूल होगी और हमें स्थिर सरकारें

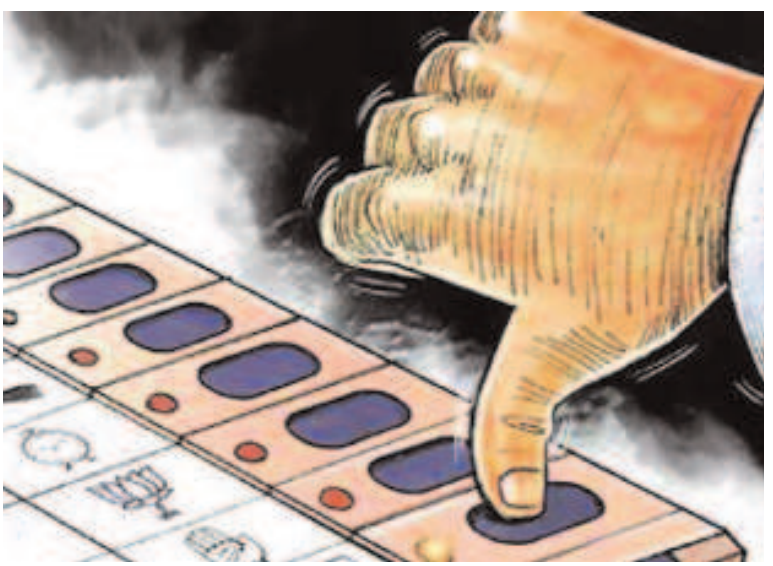

प्रदान कर सकेगी। ऐसा महसूस किया जाता है कि कोई भी व्यवस्था अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं होती। प्रत्येक के अपने फायदे और नुकसान हैं। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि सिस्टम को कैसे लागू किया जाता है और यह कहाँ और कैसे काम करता है।

धन और बाहुबल के प्रयोग को खत्म करना

पिछले सात दशकों में चुनावी प्रक्रिया में धन और बाहुबल की भूमिका काफी बढ़ गई है और इसने चुनावी प्रक्रिया पर अत्यधिक प्रभाव डाला है। चुनाव में धन और बाहुबल इतना निर्णायक कारक शायद कभी नहीं रहा, जितना आज दिखाई देता है। चुनावों में भारी मात्रा में धन बहाए जाने के परिणामस्वरूप एक प्रकार की समानांतर अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ है जिसका विस्तार जारी है। जब तक अवैध अर्थव्यवस्था के संचालन को सीमित करने के लिए उचित और व्यापक उपचारात्मक कार्रवाई शुरू नहीं की जाती है, और जब तक सभी प्रकार के माफिया समूहों पर अंकुश नहीं लगाया जाता है, तब तक उनकी भूमिका चुनाव प्रक्रिया को विकृत करने में जारी रहेगी। चुनावों के लिए सार्वजनिक फंडिंग एक उम्मीदवार द्वारा किए जाने वाले भारी चुनावी खर्च का सवाल हमारी राजनीति में गंभीर चिंता का विषय रहा है। इसने चुनाव आयोग द्वारा तय की गई खर्च की सीमा को लगभग बहुत कम या शून्य कर दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उम्मीदवार और पार्टियाँ मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए भारी मात्रा में धन का उपयोग कर रहे हैं। इससे काले धन को चुनावी प्रक्रिया में घुसने का मौका मिल गया है। इसलिए यह अपरिहार्य है कि चुनाव खर्च पर अंकुश लगाने के लिए लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराए जाएँ। इससे सभी प्रकार के चुनावी खर्चों में कमी आएगी और भारत में एक स्वस्थ पार्टी प्रणाली के विकास को बढ़ावा देने में मदद मिलेगी।

उपर्युक्त प्रस्ताव के अलावा, यह नितांत आवश्यक है कि चुनाव अभियान के लिए राज्य वित्त पोषण की कुछ प्रणाली शुरू की जाए जिसके तहत मान्यता प्राप्त दलों और निर्दलीय उम्मीदवारों, जिन्होंने पिछले चुनावों में मतदान का 1/10 वोट प्राप्त किया हो, जैसा कि निर्धारित किया गया है। कानून द्वारा, चुनाव आयोग द्वारा चुनाव व्यय पर लगाई गई सीमा के 1/3 के बराबर दो किश्तों में एक निश्चित योगदान प्राप्त करने का हकदार बनाया गया है।

मतदाताओं को पहचान पत्र जारी करना

फर्जी मतदान, प्रतिरूपण और अन्य कदाचारों को रोकने के लिए, 1988 में विपक्षी दलों के नेताओं ने बहुउद्देशीय पहचान पत्र शुरू करने का सुझाव दिया। मतदाताओं की तस्वीरों वाले इन कार्डों का उपयोग अन्य उद्देश्यों जैसे बैंक खाते खोलने, ऋण माँगने आदि और स्थायी पहचान पत्र के रूप में भी किया जा सकता है। अतीत में, सिक्किम, मेघालय और नागालैंड जैसे कुछ उत्तर-पूर्वी राज्यों के मतदाताओं को ऐसे कार्ड जारी किए गए थे और यह काफी सफल व्यवस्था पाई गई थी। हालाँकि, हमारे जैसे बड़े देश में इस योजना को शुरू करने में व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं और योजना के कार्यान्वयन में आने वाली भारी लागत और इसे समय-समय पर अद्यतन करने के लिए एक नियमित मशीनरी के साथ दो प्रतियों में फोटो पहचान पत्र तैयार करने में शामिल हैं।

गैर-गंभीर उम्मीदवारों का उन्मूलन

किसी विशेष निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की संख्या में वृद्धि हुई है। कुछ मामलों में, उम्मीदवारों की संख्या 100 से अधिक थी, जिससे पूरी चुनावी प्रक्रिया काफी मनोरंजक हो गई। कुछ मामलों में, मतपत्र इतने बड़े होते थे कि मतदाताओं के लिए वांछित उम्मीदवारों या उनके प्रतीकों का पता लगाना बहुत मुश्किल हो जाता था। इस संबंध में चुनाव आयोग से भी कई शिकायतें की गई हैं। चुनाव आयोग ने खुद ही तुच्छ और गैर-गंभीर उम्मीदवारों की बहुतायत पर अंकुश लगाने के लिए कई सिफारिशें की हैं। उनमें से हैं -

(1) सुरक्षा जमा राशि बढ़ाई जानी चाहिए।

(2) स्वतंत्र उम्मीदवारों को आधिकारिक सुविधाएँ जैसे टेलीफोन, प्रिंटिंग पेपर के लिए सब्सिडी आदि से वंचित किया जाना चाहिए।

(3) चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार, जो विशिष्ट प्रतिशत वोट हासिल करने में विफल रहे, उन्हें अगला चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किया जाना

चाहिए। इन सिफारिशों को अमल में लाने से पहले राष्ट्रीय सहमति बनाने के लिए राजनीतिक दलों को इन प्रस्तावों पर विचार करना चाहिए। इस संबंध में, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में हालिया संशोधन यह प्रावधान करता है कि किसी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल द्वारा प्रायोजित नहीं किए गए उम्मीदवार की मृत्यु की स्थिति में चुनाव को रद्द नहीं किया जाएगा, इस दिशा में एक कदम है।

निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन

संविधान में प्रावधान था कि हर जनगणना के बाद परिसीमन होगा लेकिन बाद में इसमें संशोधन किया गया। अब अगर सरकार फिर से डी-लिमिटेशन शुरू करना चाहती है तो उसे पहले संविधान में संशोधन करना होगा। अंतिम परिसीमन लगभग 20 साल पहले 1973-74 में हुआ था और मतदाता सूची 1971 में हुई जनगणना के आधार पर तैयार की गई थी। संविधान के प्रावधान अब 2000 ई. के बाद परिसीमन की परिकल्पना करते हैं। 1971 के बाद से, कोई परिसीमन नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप सभी निर्वाचन क्षेत्र आकार की दृष्टि से बहुत भिन्न होते हैं।

इनके अलावा, कुछ अन्य सुधार जो हमारी चुनावी प्रक्रिया को विभिन्न कमियों से मुक्त बनाने के लिए सुझाए जा सकते हैं, उन्हें निम्नानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता है -

1. सजा के आपराधिक रिकॉर्ड वाले व्यक्ति को प्रतियोगिता से अयोग्य घोषित किया जाना चाहिए।
2. जिन उम्मीदवारों को चुनावी भ्रष्टाचार और बूथ कैप्चरिंग में शामिल होने के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है, उन पर भी मुकदमा चलाया जाना चाहिए, दंडित किया जाना चाहिए और लंबी अवधि के लिए अयोग्य ठहराया जाना चाहिए।
3. चुनाव की पूर्व संध्या पर जनसंचार माध्यमों की भूमिका को यथासंभव निष्पक्ष बनाने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।
4. किसी उम्मीदवार द्वारा किए गए कुल चुनाव खर्च को फंड सीमा में शामिल किया जाना चाहिए, जिसमें एक पार्टी द्वारा किया गया खर्च भी शामिल है।
5. बूथ-कैप्चरिंग को एक संज्ञेय अपराध बनाया जाना चाहिए और चुनाव आयोग को चुनाव अधिकारियों और अन्य लोगों के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने का अधिकार दिया जाना चाहिए जो अपराध को बढ़ावा देते पाए जाते हैं।
6. राजनीतिक दलों/राज्य सरकारों के लिए चुनाव आयोग की आचार संहिता को प्रभावी बनाने के लिए कानूनी मंजूरी दी जानी चाहिए। आधिकारिक मशीनरी के दुरुपयोग को आर.पी. अधिनियम, 1951 के कानूनी प्रावधानों के तहत 'भ्रष्ट आचरण' के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए।
7. किसी पार्टी को चंदा रुपये तक सीमित करने के लिए कंपनी अधिनियम में संशोधन किया जाना चाहिए। किसी भी राजनीतिक पार्टी को अधिकतम एक लाख रूपए और एक उम्मीदवार को रु. 50,000 तक की राशि चंदा के रूप में प्राप्त करने का प्रावधान होना चाहिए।

संसदीय राजनीति में, चुनावों को लोकतंत्र के त्योहार के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसलिए, उन्हें स्वतंत्र, निष्पक्ष और निष्पक्ष तरीके से संचालित किया जाना चाहिए ताकि संसद और राज्य विधानमंडलों की संस्था के लिए अपने प्रतिनिधियों का चयन करने में लोगों की इच्छा वास्तव में प्रतिबिंबित हो। लोगों के मन में, चाहे वे काउंटी के अंदर रहते हों या बाहर, चुनावी प्रक्रिया की निष्पक्षता के बारे में कोई संदेह नहीं होना चाहिए। केवल इसी तरह से हम अपने संसदीय लोकतंत्र को और मजबूत और जीवंत बना सकते हैं। ❑

निश्चित रूप से चुनाव किसी भी राज्य या राष्ट्र का नीतिगत मसला हो सकता है। लेकिन इन बातों को ध्यान में रखकर देखा जाए तो राष्ट्र में 'एक देश एक चुनाव' को लागू करने से कई समस्याएँ हल हो सकती हैं। हो सकता है कि इसका क्रियान्वयन होने के पश्चात कुछ समय कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़े लेकिन राष्ट्र की प्रगति के लिए इन कठिनाइयों का भी समाधान निश्चित रूप से राष्ट्र के पास ही होगा।

विकसित भारत के लिए जरूरी है 'एक देश एक चुनाव'

प्रो. हरीश अरोड़ा
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
पी जी डी ए वी कॉलेज (सांध्य)
(दिल्ली विश्वविद्यालय),
नेहरू नगर, नई दिल्ली

विगत कुछ वर्षों से भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 'एक देश एक चुनाव' के विचार को जिस गंभीरता के साथ उठाया, वह आज के समय विमर्श का विषय बन गया है। आखिर किसी भी राष्ट्र और भारत राष्ट्र के लिए 'एक देश एक चुनाव' का होना क्या मायने रखता है, इस पर विचार तो होना ही चाहिए।

वास्तव में किसी भी राष्ट्र की उन्नति का आधार उसकी अर्थव्यवस्था होता है। बिना आर्थिक रूप से सुदृढ़ हुए राष्ट्र को प्रगति के पथ पर ले जाना संभव नहीं होगा। हजारों वर्ष पूर्व भारत वर्ष को 'विश्व गुरु' के रूप में विश्व ने यूं ही स्वीकार नहीं किया था। उस काल खंड में भारत की आर्थिक सुदृढ़ता का परिचायक यही है कि प्रत्येक व्यक्ति, जिसने भी इस राष्ट्र की यात्रा की, उसने इसे 'सोने की चिड़िया' का देश कहा। अर्थात् यहाँ शायद ही कोई घर होगा जहाँ लोगों के पास स्वर्ण न हो। लेकिन समय से करवट बदली और विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत पर निरंतर आक्रमण कर इस देश को लूटा और यहाँ के संसाधनों का भरपूर दुरुपयोग किया। खिलजी से लेकर अंग्रेजों ने भारत की आर्थिक रीढ़ पर ऐसा प्रहार किया कि भारत विश्व की सर्वश्रेष्ठ अर्थव्यवस्था से संघर्ष करती अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गया।

संघर्ष की ऐसी स्थिति में भारत ने जब स्वतंत्रता प्राप्त की तो उसकी अर्थव्यवस्था को नए सिरे से खड़ा करने के लिए आवश्यकता थी धन के समुचित उपयोग की। जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से उस समय भारत की जनसंख्या लगभग 30 करोड़ के आस-पास थी। उस दौर में भी जनसंख्या का यह अनुपात भारत के विकास को अवरुद्ध करने की दिशा में प्रमुख भूमिका निभा रहा था। ऐसे में इतनी बड़ी जनसंख्या वाले राष्ट्र में लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए धन की आवश्यकता तो थी ही वहीं पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा सुदृढ़ भारत के निर्माण के लिए भी आर्थिक मजबूती भी आवश्यक थी। आरंभ में राष्ट्रीय चुनाव और राज्यों के चुनाव एक साथ होने के कारण चुनावों पर होने वाला खर्च सीमित था। लेकिन धीरे-धीरे भारत में लोकतांत्रिक शक्तियों का दुरुपयोग और राज्य सरकारों के अपने कार्यकाल को पूर्ण करने से पहले ही उनका गिर जाना, एक भयावह समस्या के रूप में खड़ा हो गया। ऐसे में मध्यावर्ती चुनावों के कारण राज्यों में नए सिरे से चुनाव कराना आर्थिक रूप से संकट पैदा करने लगा।

यह संकट केवल राज्यों के संबंध में ही नहीं था। राष्ट्रीय सरकार के प्रति आम-जनता की नाराजगी के चलते बहुदलीय राजनीति का उदय हुआ। ऐसे में राष्ट्र में विभिन्न दलों से बनी सरकार क्षेत्रीय और छोटे दलों के दबाव में काम करने लगी। ऐसी स्थिति में जब सरकार दबाव से मुक्त होने के लिए जनहित में अथवा अपने वर्चस्व के लिए स्वतंत्र निर्णय लेने लगी, तब सरकारों का बीच में ही गिर जाना राष्ट्रीय राजनीति के लिए तो घातक था ही, पुन: चुनावों के कारण आर्थिक बोझ भी भारत की सरकारों पर पड़ने लगा। इतना ही नहीं वैचारिक प्रतिबद्धताओं के कारण भी कई बार सरकारों का गिरना आम बात हो गई। आपको याद होगा कि भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार पहली बार वर्ष 1988 में केवल 13 दिन ही चल पाई। उसके पश्चात उन्होंने फिर से सरकार बनाई जो राजनीतिक उठापटक के बीच 13 महीने तक चल सकी। दो वर्षों में तीन बार मध्यवर्ती चुनावों के कारण हजारों करोड़ रुपये का आर्थिक बोझ भारत को उठाना पड़ा।

ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक तौर पर उठना ही था कि क्या एक देश में प्रत्येक वर्ष किसी न किसी राज्य में होने वाले चुनाव और अस्थिर सरकारों के कारण बार-बार होने वाले राष्ट्रीय चुनावों से भारत की अर्थव्यवस्था और उसके विकास की गति को अवरुद्ध होने से बचाने के लिए कोई उपाय होना चाहिए या नहीं! इस दिशा में मोदी सरकार ने आरंभ से ही विचार करना शुरु किया। भारत सरकार ने हाल में पूर्व राष्ट्रपति की अध्यक्षता में एक समिति का गठन कर लोगों और राजनीतिक दलों से इस संबंध में सुझाव भी मांगे। अभी उस समिति की रिपोर्ट पर निर्णय लेना बाकी है। इस पर सार्वजनिक रूप से सुझाव माँगने के साथ-साथ उस पर विधिक राय भी ली जा रही है। इस संबंध में व्यक्तिगत रूप से मुझे लगता है कि इस दिशा में सोचने की गंभीर आवश्यकता है। 'एक देश एक चुनाव' को लागू करने में निश्चित रूप से अनेक कठिनाइयाँ हो सकती हैं लेकिन इसकी उपयोगिता पर विचार किया जाए तो कुछ बिन्दु हैं जिनके विषय में सोचना जरूरी है -

- राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के लिए अलग चुनाव के कारण भारत सरकार पर आर्थिक रूप से बोझ पड़ना स्वाभाविक है। जिसके कारण जो पैसा जनहित के कार्यों पर खर्च होना चाहिए, वह चुनावों की तैयारियों पर खर्च होता है।
- चुनावों के दौरान लगने वाली आचार-संहिता के चलते राष्ट्र और राज्यों का विकास रुक जाता है। क्योंकि आचार-संहिता में सरकारों को राज्य और राष्ट्र हित में नीतिगत मामलों पर निर्णय ले पाना संभव नहीं हो पाता। ऐसे में विकास के कार्य की देरी होने के साथ-साथ उस पर होने वाला खर्च भी बढ़ जाता है।
- अलग-अलग होने वाले चुनावों के कारण राजनैतिक दलों को भी चुनावों में प्रचार के लिए खर्च करना पड़ता है जिसके चलते उसे आर्थिक रूप से दान प्राप्त करना पड़ता है। कई बार दान प्राप्ति भ्रष्टाचार का भी कारण बन जाती है।
- देश में अलग-अलग राज्यों में बच्चों की शिक्षा पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। युवा पीढ़ी में चुनावों को लेकर एक अलग आकर्षण होता है। ऐसी स्थिति में चुनावों का लंबा समय होने के कारण उनकी शिक्षा को प्रभावित करता ही है, कई बार परीक्षाओं की तिथियों को भी बदलना पड़ता है। इसके चलते विद्यार्थियों पर मानसिक दबाव भी बढ़ जाता है।

निश्चित रूप से चुनाव किसी भी राज्य या राष्ट्र का नीतिगत मसला हो सकता है। लेकिन इन बातों को ध्यान में रखकर देखा जाए तो राष्ट्र में 'एक देश एक चुनाव' को लागू करने से कई समस्याएँ हल हो सकती हैं। हो सकता है कि इसका क्रियान्वयन होने के पश्चात कुछ समय कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़े लेकिन राष्ट्र की प्रगति के लिए इन कठिनाइयों का भी समाधान निश्चित रूप से राष्ट्र के पास ही होगा। ❑

एक देश एक चुनाव का इतिहास और वर्तमान परिदृश्य

डॉ. पुष्प दीप डागर
सहायक आचार्य (वाणिज्य)
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

भारत विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का एक अनूठा और जीवंत उदाहरण है जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति के लोग मिलकर अपने देश के लिए चुनाव में वोट डाल कर विभिन्न राज्यों, निकायों और देश की लोकसभा का चुनाव करते हैं। इसके अंतर्गत लोकसभा, राज्यों की विधानसभा एवं विभिन्न निकायों जिसमें नगर निगम, नगर पालिका और हमारे देश की सबसे छोटी और मजबूत लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई ग्राम पंचायत का चुनाव करते हैं। जब से भारत को आजादी मिली है तभी से हम सभी ने अपने लोकतंत्र की चुनाव प्रक्रिया को अपनाते हुए इन सभी स्वरूपों में चुनाव में भाग लिया। आजादी के बाद से भारत में 400 से अधिक चुनाव हुए थे। आजादी के बाद 1952, 1957, 1962 और 1967 तक भारत में 'एक देश एक चुनाव' की परंपरा चलती रही परंतु 1968-1969 में कुछ राज्यों की विधानसभा भंग कर देने से यह परंपरा टूट गई जिसमें पूर्व प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की भूमिका इन राज्यों की विधानसभा को भंग करने में अधिक रही। इसी प्रकार 1970 में लोकसभा चुनाव भी समय से पूर्व कराने से यह परंपरा टूटी और फिर धीरे-धीरे भारत देश चुनावों का देश कहलाने वाला बन गया। परंतु इस प्रकार बार-बार चुनाव में जाने से रोकने हेतु अनेक बार प्रयास किया गया जो इस प्रकार है -

1. 1983 में चुनाव आयोग ने बार बार चुनाव के खर्चों को देखते हुए एक देश एक चुनाव का सुझाव दिया था।

2. 1999 में विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति बी.पी. जीवन रेड्डी की रिपोर्ट में भी एक देश एक चुनाव की बात को दोहराया गया।

3. 2015 में कानून और न्याय पर संसद की स्थाई समिति ने भी पूरे देश में एक साथ चुनाव कराने का सुझाव दिया था।

4. 2017 में नीति आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट में एक देश एक चुनाव को देश हित में बताया था।

5. 2018 में विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति बी एस चौहान ने इस पर अपनी सहमति दी।

इस विषय पर पुन: माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने 'एक देश एक चुनाव' के लिए 2 सितंबर 2023 को एक समिति का गठन किया गया जिसमें पूर्व राष्ट्रपति श्री राम नाथ कोविंद को समिति का अध्यक्ष, और अन्य सदस्यों में गृह मंत्री श्री अमित शाह, नेता प्रतिपक्ष राज्य सभा श्री गुलाम नबी आजाद, नेता प्रतिपक्ष श्री अधीर रंजन चौधरी, वित्त आयोग के पूर्व अध्यक्ष एन.के. सिंह, पूर्व सचिव 15वें वित्त आयोग डॉ. सुभाष चंद्र कश्यप, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हरीश साल्वे, पूर्व सतर्कता आयुक्त श्री संजय कोठारी, उच्च स्तरीय समिति के सचिव डॉ. नितिन चंद्रा तथा विशेष आमंत्रित सदस्य और कानून मंत्री (राज्य मंत्री) अर्जुन राम मेघवाल को शामिल किया गया। इस कमेटी की पहली बैठक 23 सितंबर को बुलाई गई और अलग अलग समय पर बातचीत करते हुए 191 दिनों में कार्य को पूर्ण करने के बाद 14 मार्च 2024 को अपनी रिपोर्ट तैयार करके राष्ट्रपति महोदया आदरणीय द्रोपदी

मुर्मू को सौप दी। इस रिपोर्ट में कुल 47 राजनीतिक दलों से चर्चा की गई जिसमें से 32 दलों ने एक देश एक चुनाव के पक्ष में मतदान किया और 15 दलों ने विरोध में मतदान किया। इस रिपोर्ट में कुल 18626 पृष्ठ शामिल हैं।

एक देश एक चुनाव के फायदे

एक देश एक चुनाव के निष्पादन से अनेक फायदे होते हैं जो इस प्रकार है –

1. चुनाव की लागत में कमी आना।
2. बिना रुकावट के सरकारी नीतियों को लागू करने में आसानी होना।
3. कर्मचारियों के कार्यों में अवरोध उत्पन्न न होना।
4. विकास कार्यों में तेजी आना।
5. सामाजिक समरसता को बढ़ावा मिलेगा।
6. लोकतंत्र की नींव मजबूत होगी।
7. मतदाताओं का विश्वास बढ़ेगा।
8. समय की बचत होगी।
9. काले धन का प्रयोग नहीं हो सकेगा।

एक देश एक चुनाव के विपक्ष में भी कुछ बातें संवाद से ध्यान में आती हैं जो इस प्रकार हैं –

1. क्षेत्रीय और राष्ट्रीय मुद्दों में विभिन्नता के कारण विवाद खड़ा हो सकता है।

2. क्षेत्रीय दलों का प्रभाव कम होने की आशंका जताई गई है।

3. राष्ट्रीय स्तर पर अधिक संसाधनों की आवश्कता होगी। अधिक संख्या में ईवीएम मशीन लानी होगी और अधिक कर्मचारियों को भी लगाना पड़ेगा।

4. एक साथ चुनाव कराने में अधिक कार्य करना होगा। सभी चुनावों का अलग अलग रिकॉर्ड बनाने के लिए समय भी अधिक लगेगा।

5. राजनीतिक दलों को प्रचार के लिए कम समय मिलेगा। विभिन्न दलों में नेताओं को सभी जगह पर प्रचार अभियान में शामिल होने में समस्या आएगी।

एक देश एक चुनाव की आवश्कता

एक साथ चुनाव कराने के लिए कोविंद समिति ने संविधान में कुछ संशोधन किया जाना भी जरूरी बताया है जो इस प्रकार है –

1. अनुच्छेद 83 में बदलाव करना होगा जिसमें संसद के सदनों की अवधि में परिवर्तन करना होगा।

2. अनुच्छेद 85 में बदलाव करना होगा जिसमें राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग करना शामिल है।

3. अनुच्छेद 172 में जरूरी बदलाव करने होंगे जिसमें राज्य विधान सभा और विधान मंडलों की अवधि शामिल है।

4. अनुच्छेद 174 में राज्य विधान मंडलों का विघटन के लिए भी संशोधन किया जाना जरूरी है।

5. अनुच्छेद 356में भी परिवर्तन करना होगा जिससे राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाया जा सके।

6. इसी प्रकार अनुच्छेद 368 के तहत आधे से अधिक राज्यों से सहमति भी इसके लिए अनिवार्य है।

इस विषय पर भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधान मंत्री विंस्टन चर्चिल ने भी कहा है कि

भारत विश्व की सबसे बड़ी लोकतंत्र का एक अनूठा और जीवंत उदाहरण है जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति के लोग मिलकर अपने देश के लिए चुनाव में वोट डाल कर विभिन्न राज्यों, निकायों और देश की लोकसभा का चुनाव करते हैं। इसके अंतर्गत लोकसभा, राज्यों की विधानसभा एवं विभिन्न निकायों जिसमें नगर निगम, नगर पालिका और हमारे देश की सबसे छोटी और मजबूत लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई पंचायत समिति का चुनाव करते हैं। जब से भारत की आजादी मिली है तभी से हम सभी ने अपने लोकतंत्र की चुनाव प्रक्रिया को अपनाते हुए इन सभी स्वरूपों में चुनाव में भाग लिया।

लोकतंत्र के खराब स्वरूप को भी बदलने का कर्त्तव्य हमारा ही होता है ताकि आने वाली पीढ़ी हमें इसके लिए दोषी न ठहराए।

कोविंद समिति ने अपनी रिपोर्ट को दो चरणों में लागू करने का सुझाव दिया है कि–

– पहले चरण में लोक सभा और राज्य सरकारों की विधान सभाओं के चुनाव कराए जाए।

– दूसरे चरण में 100 दिनों के अंदर अंदर नगर पालिका और ग्राम पंचायत समिति के चुनाव कराए जाए।

– देश में एक ही मतदाता सूची जारी हो जिसमें सभी को शामिल किया जाए।

एक देश एक चुनाव भारत की आवश्यकता भी है और मजबूरी भी क्योंकि आज देश में हर साल कोई न कोई चुनाव होते रहते हैं जिसके कारण सरकारों को भी अपनी कार्य योजना को लागू करने में अधिक समय लगता है और लागत भी अधिक आती है। चुनाव आयोग की रिपोर्ट के अनुसार अलग-अलग चुनाव से देश में चुनाव खर्च में तेजी से वृद्धि हुई है जिसको चुनाव आयोग की रिपोर्ट से देखा जा सकता है। 1951-52 में चुनाव खर्च 11 करोड़ रूपए था जो 2019 में बढ़ कर 60000 करोड़ रूपए हो गया था। एक सर्वे के अनुसार 2024 में यह खर्च 1.30 लाख करोड़ रुपए होने का अनुमान है जो किसी भी तरह से देश हित में नही है।

निष्कर्ष

इस प्रकार सारांश में यह कहा जा सकता है कि भारत में एक देश एक चुनाव की परंपरा पहले भी रही है और आज भी इसको लागू किया जाना समय की जरूरत बन गई है। जिस प्रकार लगातार चुनावी खर्च बढ़ता जा रहा है और अलग-अलग समय पर देश में चुनाव हो रहे हैं वे किसी भी प्रकार से न्यायोचित नहीं है। इसको लागू करवाने के लिए प्रत्येक राजनीतिक दल को व्यक्तिगत हितों को छोड़कर राष्ट्र हित को सर्वोपरि मानते हुए एक देश एक चुनाव को लागू करवाने के लिए आगे आना चाहिए। ❑

एक देश, एक चुनाव के मायने

डॉ. अनुपम चतुर्वेदी

सह आचार्य-राजनीति विज्ञान
राजकीय बांगड़ स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, पाली, राजस्थान

भारत संघात्मक शासन प्रणाली वाला देश है जिसमें केन्द्र और राज्य दोनो स्तरों पर सरकारें होती हैं। आजादी के बाद जब चुनाव करवाने का समय आया तो काफी विचार-विमर्श के बाद राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचन एक साथ करवाने का निर्णय लिया गया। एक साथ लोकसभा और विधानसभा के निर्वाचन करवाने का फैसला चुनौतीपूर्ण अवश्य था लेकिन भारत जैसे गरीब राष्ट्र के लिए तत्कालीन परिस्थितियों में इसे श्रेष्ठ व्यवस्था माना गया और 1967 तक यह क्रम चलता गया। लेकिन 1971 के लोकसभा चुनावों से ही लोकसभा और राज्यों की विधानसभा के चुनाव अलग-अलग समय पर होने लगे और भारत अति चुनाव के दौर में फंस गया।

वर्तमान केन्द्र सरकार द्वारा समिति का गठन

भारत में निरन्तर चुनावों की समस्या को ध्यान में रखते हुए 1999 में बी पी जीवन रेड्डी की अध्यक्षता वाले विधि आयोग ने एक साथ चुनाव कराने के विचार का समर्थन किया। अगस्त 2018 में भी विधि आयोग ने एक राष्ट्र एक चुनाव के विचार का समर्थन किया। वर्तमान केन्द्रीय सरकार ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए आठ सदस्यीय उच्च स्तरीय समिति का गठन किया है। पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविन्द को समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है।

एक देश एक चुनाव की आवश्यकता क्यों?

भारत एक विकासशील राष्ट्र है और बार-बार निर्वाचन आर्थिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से नुकसान दायक साबित हो रहा है। नीति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार ''भारत मे हर साल कोई न कोई चुनाव अवश्य होता है। इस कारण बड़े पैमाने पर धन की आवश्यकता होती है साथ ही सुरक्षा बलों और मानव शक्ति की लंबे समय तक तैनाती होती है। यदि एक देश एक चुनाव का प्रावधान कर दिया जाए तो धन के

वर्तमान परिदृश्य में राजनीतिक दलों को लगता है कि ये व्यवस्था केन्द्र में सतारूढ़ दल को फायदा पहुँचाने वाली नीति है इसलिए वे इस व्यवस्था को आशंका की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन आँकड़े बताते है कि लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने पर। जनता का जनादेश राज्य एवं केन्द्र स्तर पर अलग-अलग रहा है। आंध्र प्रदेश, उड़ीसा स्पष्ट उदाहरण पेश करते हैं। अतः एक देश एक राष्ट की प्रणाली का भारत में पुनः लागू होना राष्ट्रीय हित में तथा सभी राजनीतिक दलों को संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर इस प्रणाली को लागू करने में सहयोग देना चाहिए।

अनावश्यक व्यय को रोका जा सकेगा तथा सुरक्षा व्यवस्था अपना ध्यान जरूरी कामों में लगा सकेगी।''

भारत में प्रथम लोकसभा चुनाव से सत्रहवी लोकसभा के चुनावों तक केन्द्र सरकार के व्यय को तालिका 1.1 में देख सकते हैं-

केन्द्र सरकार द्वारा लोकसभा चुनावों में व्यय राशि

भारत में चुनावी आवृत्ति को कम करने की आवश्यकता इस कारण भी है कि चुनावों की घोषणा के साथ ही आदर्श आचार संहिता लग जाती है। आदर्श आचार संहिता के दौरान सरकार द्वारा कोई भी नवीन घोषणा नहीं जा सकती है, विकास कार्य रुक जाते हैं तथा प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों में काम टालने की प्रवृत्ति देखी जाती है। यदि एक राज्य में हर वर्ष एक महीने किसी न किसी चुनाव के कारण यदि आदर्श आचार संहिता ही लगी रहेगी तो उस राज्य का सामान्य काम-काज कितना प्रभावित होगा इसकी कल्पना ही बहुत कुछ कह देती है।

एक देश एक चुनाव का इतिहास

एक देश एक चुनाव अचानक से प्रकट हुआ कोई विचार नहीं है। भारत में प्रथम आम चुनाव से लेकर 1967 के लोकसभा चुनावों तक लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ ही होते थे। यद्यपि 1959 में यह क्रम केरल में टूटा जब केन्द्र सरकार ने केरल राज्य सरकार को बर्खास्त किया था। लेकिन मोटे तौर पर चतुर्थ आम चुनावों तक यह व्यवस्था जारी रही। भारत में इस व्यवस्था को तोड़ने में केन्द्र की तत्कालीन सरकार की नकारात्मक भूमिका जिम्मेवार है। चतुर्थ आम चुनावों के बाद से ही भारतीय राजनीतिक परिदृश्य तेजी से बदलने लगा। कांग्रेस पार्टी को चौथे आम चुनाव में 283 स्थान ही प्राप्त हुए। 8 राज्यों के विधानसभा चुनावों में उसे बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। 1969 के आते-आते कांग्रेस की देश को एक जुट रखने की छवि धूमिल हो गई थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को महसूस हो गया था कि आने वाले आम चुनाव में पार्टी की स्थिति कमजोर हो सकती है। अत: राष्ट्रीय हितों को तिलांजलि देते हुए इंदिरा गांधी ने लोकसभा के चुनावों को समय 14 महीने पूर्व करवाने का फैसला किया ताकि राज्यों की एंटी इन्कम्बेंसी का असर केन्द्र के चुनावों पर न पड़े। भारत सरकार का फैसला विशुद्ध : राजनीतिक था तथा राष्ट्रीय हितों के लिए स्पष्टत: हानिकारक था।

वर्ष	व्यय राशि (करोड में)	प्रति मतदाता खर्च	मतदान केन्द्र राशि (रूपये)
1952	10.43	0.6	1,96,084
1957	5.9	0.3	2,20,478
1962	7.32	0.3	2,38,031
1967	10.8	0.4	2,43,693
1971	11.61	0.4	3,42,918
1977	23.04	0.7	3,73,910
1980	54.77	1.5	4,36,813
1984	81.51	2	5,06,058
1989	154.22	3.1	5,80,798
1991	359.1	7	5,91,020
1996	597.34	10	7,67,462
1998	666.22	11	7,73,494
1999	947.68	15	7,74,651
2004	1113.88	17	6,87,402
2009	846.77	12	8,30,866
2014	3870	46	9,27,543
2019	6500	72	10,00,035

एक देश एक चुनाव : व्यवहार में सभंव

एक साथ चुनाव कराने के लिए संविधान, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 और लोक सभा एवं राज्य विधानसभाओं के प्रक्रिया नियम में संशोधन करना होगा। इसके लिए संसद के दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत और कम से कम आधे राज्यों के अनुमोदन की आवश्यकता होगी। ये सभी परिवर्तन व्यवहार में पूरी तरह सभंव है। दक्षिण अफ्रीका और स्वीडन में एक साथ चुनाव की व्यवस्था कुशलतापूर्वक कार्य कर रही है और भारत के लिए यह व्यवस्या नई नहीं है।

निष्कर्ष

- एक देश एक चुनाव की व्यवस्था का होना समय की मांग है ताकि चुनावों की आवृत्ति को कम किया जा सके। किसी भी देश के लिए हर समय चुनावी मोड में रहना श्रेष्ठ व्यवस्था के लक्षण नहीं है। भारत में एक देश एक चुनाव व्यवस्था लागू करने के लिए निश्चित रूप से कई चुनौतियाँ हैं। वर्तमान परिदृश्य में राजनीतिक दलों को लगता है कि ये व्यवस्था केन्द्र में सतारूढ़ दल को फायदा पहुँचाने वाली नीति है इसलिए वे इस व्यवस्था को आशंका की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन आँकड़े बताते है कि लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने पर जनता का जनादेश राज्य एवं केन्द्र स्तर पर अलग-अलग रहा है। आंध्र प्रदेश, उड़ीसा स्पष्ट उदाहरण पेश करते हैं। अत: एक देश एक चुनाव की प्रणाली का भारत में पुन: लागू होना राष्ट्रीय हित में है तथा सभी राजनीतिक दलों को संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर इस प्रणाली को लागू करने में सहयोग देना चाहिए। ❑

किसी भी देश की व्यवस्था, उन्नति, प्रगति की बागडोर उस देश की सरकार के हाथ में होती है, अगर उस सरकार के निर्वाचन की प्रक्रिया ही आर्थिक रूप से किफायती न हो तो वह एक समस्या का विषय है। निर्वाचन प्रक्रिया का खर्चीला होने के कई कारक है, उन कारको पर होने वाले व्यय को कम करने के लिए समकालिक निर्वाचन ही सही उपाय है। संसाधनों के अपव्यय पर अंकुश लगाने और उनको सही उपयोग में लाने के लिए समकालिक चुनाव का होना आवश्यक है, जो की देश के अर्थतंत्र को और मजबूती देगा।

अनेक चरणों में होने वाले चुनाव और देश पर बढ़ता आर्थिक भार

अनिमेष पारीक
अधिवक्ता, नई दिल्ली

1952 के लोकसभा चुनाव में प्रति मतदाता मात्र 6 पैसे खर्च किये गए थे वहीं 2014 में यह बढ़कर लगभग 46 रुपए प्रति मतदाता हो गया। भारत में चुनावों पर होने वाला अत्यधिक खर्च देश की आर्थिक स्थिति पर दबाव डाल रहा है।

वर्तमान में देश में सभी स्तरों पर होने वाले चुनावों को एक साथ आयोजित (समकालिक) करने पर विचार करना अनिवार्य है। हर साल देश के किसी न किसी हिस्से में होने वाले चुनाव सार्वजनिक संसाधनों पर भारी वित्तीय बोझ डालते हैं और देश के विकास में बाधा बनते हैं। अलग-अलग चुनाव कराने के लिए पूरी प्रक्रिया के दौरान कई सरकारी विभागों, पुलिस बलों, अन्य हितधारकों और नागरिकों को शामिल करने से पूरी अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इस परिदृश्य में चुनाव एक महँगा मुद्दा बन गया है।

भारत में 1967 के बाद से साथ-साथ होने वाले चुनावों का चक्र बाधित हो गया था। संविधान के अनुच्छेद 356 के मनमाने उपयोग ने कई राज्यों की सरकारों को उखाड़ फेका था, जिसने एक साथ चुनाव कराने की प्रक्रिया में व्यवधान पैदा किया। वर्तमान में परिदृश्य यह है कि पूरे वर्षभर देश में कहीं न कहीं चुनाव का आयोजन होता रहता है, उदाहरणत: 2019 से 2022 के चार वर्षो के दौरान देश ने एक आम चुनाव और 21 विधान सभा चुनाव देखे हैं। इन चार वर्षों में भारत में हर वर्ष औसतन 5 चुनाव हुए हैं।

देश में समकालिक (साथ-साथ) चुनाव के आयोजन के लिए कारकों की जाँच की जानी चाहिए, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारक आर्थिक और वित्तीय व्यय है। इसे हम निम्न बिन्दुओं से समझ सकते हैं -

चुनाव में व्यय की निरंतर वृद्धि

समय के साथ चुनाव के आयोजन की लागत में भारी वृद्धि हो रही है। 1952 में आजाद भारत के पहले लोकसभा चुनाव हुए जिसमें 10.5 करोड़ रुपए का व्यय हुआ था जो कि 2014 में बढ़कर 3,870.3 करोड़ हो गया। वृद्धि की दर पर अगर गौर किया जाए तो यह 2009 के 1,114 करोड़ से यह तीन गुना हो गया है।

लोक सभा के चुनावों का खर्च केंद्र सरकार और विधानसभा के चुनावों का खर्च राज्य सरकार वहन करती है। एक साथ चुनाव आयोजित होने पर यह खर्च दोनों सरकार आधा आधा वहन करती है जिससे जनता की गाढ़ी कमाई की बचत होती है।

सरकार के अलावा राजनीतिक दलों, उम्मीदवारों का भी हर चुनाव के दौरान काफी खर्चा होता है। विभिन्न साधनों द्वारा मतदाताओं तक अपनी बात पहुँचाने के

लिए इन्हें काफी खर्च करना पड़ता है। एक अनुमान के मुताबिक 17वीं लोकसभा चुनाव में यह खर्चा 55,000 करोड़ रूपये बना जिससे वह चुनाव विश्व का सबसे महँगा चुनाव बन गया। एक साथ चुनाव करवाने से सरकारी खजाने व अन्य व्यय का बोझ कम करने में मदद मिलेगी क्योंकि इससे परिचालन, साजो सामान और अन्य चुनावी लागत में काफी कमी आएगी।

आर्थिक भार बढ़ने के कारण

आर्थिक भार में वृद्धि का कारक मतदाताओं की संख्या में इजाफा, इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों (ई.वी.एम.) की खरीद, मतदान केंद्र बनाना, मतदान कर्मियों और सशस्त्र सुरक्षा कर्मियों की तैनाती, जागरूकता कार्यक्रम चलाना और मतदाता पहचान पत्र जारी करना और अन्य विविध काम शामिल है।

1. मतदान केंद्र व यंत्रों का व्यय

अनुमान के अनुसार किसी राज्य में लोकसभा और विधानसभा चुनाव आयोजित करवाने की लागत बराबर होती है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जब किसी राज्य में लोक सभा और विधान सभा के चुनाव साथ नहीं होते तब इस प्रक्रिया पर कितना ज़्यादा खर्चा होता है और देश की आर्थिक स्थिति पर कितना प्रभाव पड़ता है। चुनाव आयोग के अनुसार अगर 2024 में देश में समकालिक चुनाव करवाए जाए तो 11,80,000 मतदान केन्द्रों, 15.97 लाख बैलेट यूनिट, 11.49 लाख कंट्रोल यूनिट और 12.36 लाख VVPAT मशीनों की आवश्कयता होगी, जिसमें 5,190 करोड़ खर्च होगा और इसी प्रकार 2029 के चुनावों में बढ़ी हुई इकाइयों के साथ अनुमानित खर्चा 7,951.37 करोड़ का होगा। इसके अतिरिक्त मतदान केन्द्रों, सुरक्षा बलों, व अन्य विषयों पर अलग से व्यय होगा। यह खर्च 2014 में करवाए गए लोकसभा चुनाव और अगर उसी वर्ष देश भर में विधान सभा चुनाव भी करवाए जाते, उसके बराबर आता है अर्थात् 2024 या 2029 में दोनों चुनावों को अलग-अलग करवाने की लागत उसी वर्ष में समकालिक चुनाव करवाने की लागत से बहुत अधिक होती है, क्योंकि मशीनों की खरीद के अलावा सभी खर्चे 5 वर्ष में एक ही बार किए जाएंगे।

मतदान मशीनों की उम्र लगभग 15 वर्ष होती है, जिससे अगर समकालिक चुनाव करवाया जाए तो वे तीन चुनावों में उपयोग आएगी, जिससे हर 15 वर्ष के बाद एक नियमित खर्चा होगा जो अलग अलग चुनाव पर होने वाले व्यय से कम होगा। विभिन्न स्तरों के चुनाव के लिए अलग-अलग मतदाता सूची की जगह एक ही मतदाता सूची बनाकर भी आर्थिक व्यय बच सकता है।

2. सुरक्षा बलों की तैनाती

17वीं लोक सभा चुनाव में आयोग ने केंद्रीय सशस्त्र पुलिस बल की 3,146 कम्पनियाँ तैनात की थी, जिसमें जवानों की कुल संख्या 3,14,600 थी, जिसमें कुल व्यय लगभग 800 करोड़ हुआ। चुनाव के दौरान चुनाव आयोग आम तौर पर केंद्रीय सशस्त्र पुलिस बल और अन्य पुलिस बलों से सहायता माँगता है, जिन्हें कानून-व्यवस्था और शांति बनाये रखने के लिए तैनात किया जाता है। अलग-अलग चुनावों में सुरक्षा कर्मियों की निरंतर भागीदारी की आवश्यकता होती है जिससे उन्हें देश में आतंरिक सुरक्षा बनाये रखने के मुख्य उद्देश्य के लिए तैनात नहीं किया जा सकता है। समकालिक चुनावों से इस पद्धति पर रोक लगेगी और 5 वर्षों में एक बार सुरक्षा बलों का इस्तेमाल निर्वाचन के लिए होगा अन्यथा नहीं। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी निम्न प्रकार से आर्थिक भार बढ़ता है।

3. आदर्श आचार संहिता लागू होना

आदर्श आचार संहिता जो कि स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए दिशा निर्देश है, चुनाव वाले राज्य में केंद्र और राज्य सरकारों के संपूर्ण विकास कार्यक्रम और गतिविधियों को रोक देता है। यह संहिता चुनाव औसतन तीन महीने, यानी चुनाव की घोषणा से परिणाम के दिन तक लागू रहती है। बार-बार चुनाव होने से आचार संहिता लागू होने पर नीतिगत पंगुता और शासन को घाटा होता है। प्रभावी रूप से नियमित प्रशासनिक गतिविधियों को छोड़कर अन्य कल्याणकारी योजनाएँ और सरकारी परियोजनाएँ आचार संहिता के लागू रहने तक निलंबित रहती है।

4. सरकारी अधिकारियों और संस्थानों का विचलन

17वें लोकसभा चुनाव में 10,38,000 मतदान केन्द्रों पर चुनाव प्रक्रिया चलाने और पर्यवेक्षण करने के लिए मतदान अधिकारिओं के रूप में 70 लाख कर्मियों की सेवाएँ ली थी। निर्वाचन में सुरक्षा कर्मियों के अलावा अन्य सरकारी कर्मचारी चुनावों के सुचारु सञ्चालन को सुनिश्चित करने में अपना योगदान देते हैं। ऐसे कर्मचारी लगातार चुनावों में नियुक्ति के कारण अपनी नियमित जिम्मेदारियों से चूक जाते हैं, जिससे देश की व्यवस्था डगमगाती है। समकालिक चुनाव से यह सुनिश्चित होगा कि ऐसे कर्मियों को पाँच साल के दौरान केवल एक बार चुनाव करवाने के लिए नियुक्त किया जाए जिससे वे अपने प्राथमिक कार्य और जिम्मेदारियों को पूरा करने में अधिक समय दे पाएंगे।

किसी भी देश की व्यवस्था, उन्नति, प्रगति की बागडोर उस देश की सरकार के हाथ में होती है, अगर उस सरकार के निर्वाचन की प्रक्रिया ही आर्थिक रूप से किफायती न हो तो वह एक समस्या का विषय है। निर्वाचन प्रक्रिया का खर्चीला होने के कई कारक हैं, उन कारकों पर होने वाले व्यय को कम करने के लिए समकालिक निर्वाचन ही सही उपाय है। संसाधनों के अपव्यय पर अंकुश लगाने और उनको सही उपयोग में लाने के लिए समकालिक चुनाव का होना आवश्यक है, जो कि देश के अर्थतंत्र को और मजबूती देगा। ❑

एक देश एक चुनाव

सुरेन्द्र चतुर्वेदी
सेंटर फॉर मीडिया रिसर्च एण्ड डवलपमेंट, जयपुर, राजस्थान

हमें एक देश और एक चुनाव की नीति पर आगे बढ़ने से पहले इन क्षेत्रिय भावनाओं पर भी विचार करना ही होगा और सोचना होगा कि क्या भारत जैसे देश में दो दलीय व्यवस्था संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व कर पाएगी ? आज का समय अच्छा है कि भारतीय राजनीति के केन्द्र में और सरकार में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है। आने वाले कल में लोकतंत्र विरोधी सत्ता लोलुप लोगों का गठबंधन देश की राजनीति के केन्द्र में आ गया तो एक देश एक चुनाव की यह आदर्श स्थिति देश के मतदाताओं के लिए बुरा सपना साबित ना हो जाए?

भारत जैसे देश में चुनाव एक उत्सव है। हम भारतीय चुनावों का ठीक वैसे ही इंतजार करते हैं, जैसे किसी त्यौहार का। चुनाव आते ही अपनी नौकरी और काम धंधे से अवकाश लेकर निकल पड़ते हैं, इस उत्सव को मनाने। ट्रेन में, बस में जिस भी साधन से यात्रा करते हैं, राजनीति पर ही चर्चा होती है। दलों की रीति नीति पर बात होती है, आम जन का मन टटोला जाता है और फिर अपनी राय का निर्माण कर व्यक्ति मतदान करता है। चाहे वो चुनाव पंचायत के हों, स्थानीय निकायों के हों, विधानसभा के लिए हों या लोकसभा के लिए। ऐसा लगता है कि हमारे देश में सिर्फ चुनाव, चुनाव और चुनाव ही होते रहते हैं।

चुनाव आते ही प्रशासनिक व्यवस्था रुक जाती है, सरकारें यह दावा करती हैं कि चुनावों के कारण हमारे विकास की गति रुक जाती है और हर साल देश का हजारों करोड़ रूपया खर्च होता है, यह एक ऐसा खर्चा है जिसको बचाया जा सकता है और देश में चल रही विकास

योजनाओं को गति देने में लगाया जा सकता है। इसलिए एक देश एक चुनाव की नीति पर आगे बढ़ना चाहिए और देश एक है तो सभी राज्य विधानसभाओं और लोकसभा के चुनाव एक साथ ही करा देने चाहिए।

एक देश और एक चुनाव के पक्ष में कई रिपोर्ट और आलेख उपलब्ध हैं। विधि वेत्ताओं का भी यही मत है। लेकिन प्रश्न यह है कि हमारा मतदाता लोकसभा और विधानसभा के चुनावों की प्राथमिकताओं को अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में देखकर निर्णय करने में सक्षम हैं ? क्या वो राज्य सरकार के फैसलों और प्रशासन से प्रभावित होकर केन्द्र सरकार के भविष्य का फैसला करेगा? क्या हम अपने मतदाता की सामान्य समझ के प्रति इतने आश्वस्त हैं कि वो राज्य सरकार और केन्द्र सरकार के कामकाज को सही ढंग से परिभाषित कर उसके अनुसार निर्णय कर सके?

यह याद रखे जाने की जरूरत है कि एक देश एक वोट का निर्णय हम तब लेने जा रहे हैं, जब अभी तक सरकार पक्के तौर पर यह नहीं कह सकती कि एक देश एक वोटर लिस्ट तैयार हो चुकी है। या यह कि हमारे देश में घुसे घुसपैठिए भारत के वोटर नहीं हैं, या उनकी संतानें भारत की मतदाता मानी जाएंगी या नहीं। चुनाव आयोग और सरकारें अपने यहाँ की मतदाता सूची को सही करने के लिए क्या उपाय कर रही हैं, और कब तक चुनाव आयोग त्रुटिहीन और संशोधित मतदाता सूची को प्रकाशित कर देगा? एक देश एक चुनाव की नीति आदर्श है, परंतु इस स्थिति तक पहुँचने के लिए अभी काफी प्रारंभिक तैयारियों की आवश्यकता है। इनमें सबसे पहले तो नागरिक रजिस्टर को बनाने और संधारित करने की बात है, जिस पर सरकारें कितनी गंभीर हैं, इस पर कोई चर्चा ही नहीं होती।

1947 में देश के विभाजन के समय हमारी जनसंख्या 40 करोड़ के आस पास थी, अब हम 140 करोड़ हो गये हैं। इतनी बड़ी जनसंख्या वाले देश में चुनाव जनमानस में पल रहे असंतोष और उत्कंठाओं के प्रकटीकरण का अनूठा तरीका है, जिसमें मतदाता अपने आक्रोश और असंतोष को अभिव्यक्त कर अपने निर्णायक होने की भूमिका पर संतुष्ट होता है। अब जबकि देश में एक चुनाव की बात चल रही है तो क्या सरकारें इस बात के लिए तैयार हैं कि वो मतदाताओं के आक्रोश और असंतोष को अगले पांच सालों तक सहन कर सकेंगी?

यह सही है कि विभाजित आजादी के बाद देश में सारे राज्यों और केन्द्र सरकार के लिए एक साथ ही चुनाव होते थे। बाद में तत्कालीन केन्द्र सरकार द्वारा अलोकतांत्रिक तरीके से चुनी हुई राज्य सरकारों को बर्खास्त कर देने के कारण राज्यों और केन्द्र में चुनाव होने का समय बदलता गया। लेकिन यह भी उतना ही सही है कि इस परिस्थिति के कारण भी देश के विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय दलों को ताकत मिली। भारत जैसे विविधता वाले देश में क्षेत्रीय दल एक महत्त्वपूर्ण ताकत बनकर उभरे, और उन लोगों को भी आवाज मिली जो राष्ट्रीय परिदृश्य पर अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करा पा रहे थे।

हमें एक देश और एक चुनाव की नीति पर आगे बढ़ने से पहले इन क्षेत्रीय भावनाओं पर भी विचार करना ही होगा और सोचना होगा कि क्या भारत जैसे देश में दो दलीय व्यवस्था संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व कर पाएगी ? आज का समय अच्छा है कि भारतीय राजनीति के केन्द्र में और सरकार में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है। आने वाले कल में लोकतंत्र विरोधी सत्ता लोलुप लोगों का गठबंधन देश की राजनीति के केन्द्र में आ गया तो एक देश एक चुनाव की यह आदर्श स्थिति देश के मतदाताओं के लिए बुरा सपना साबित ना हो जाए? ❑

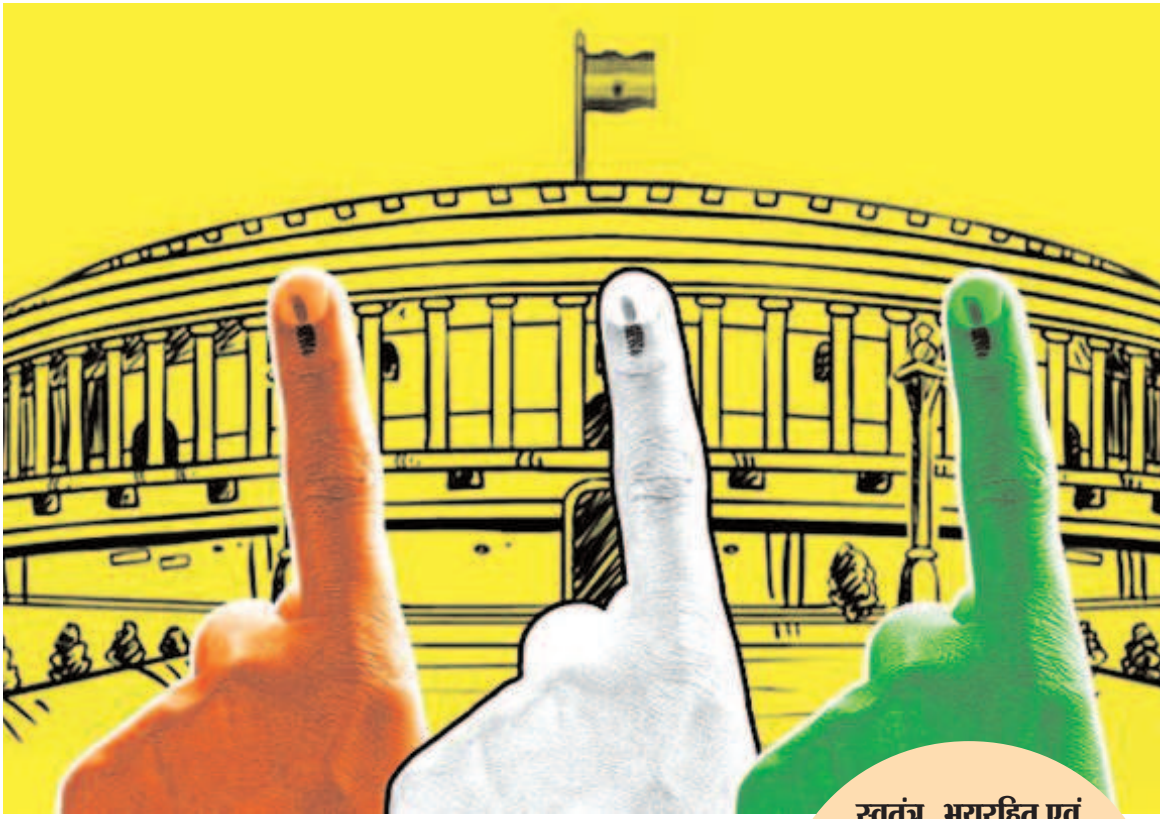

भारतीय संविधान में चुनाव

डॉ. यशस्वी सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

स्वतंत्र, भयरहित एवं निष्पक्ष चुनाव लोकतांत्रिक राजव्यवस्था की गारंटी है। सर्वोच्च न्यायालय (वी. एस. अच्युतानंदन बनाम पी. जे. फ्रांसिस केस, 2001)

चुनाव भारतीय लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की प्राण-वायु है। संसदीय लोकतंत्र की जीवन-शक्ति स्वतंत्र, निष्पक्ष व शांतिपूर्ण चुनावों के माध्यम से सुनिश्चित होती है। चुनाव वह माध्यम है जिसके द्वारा 'लोक' का निर्णय अपने पूर्ण रूप में अभिव्यक्त होकर 'तंत्र' की सत्ता को स्थापित करता है। चुनाव राष्ट्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है और राज्य व समाज के मध्य एक सेतु की भूमिका में होता है। भारतीय संविधान द्वारा परिकल्पित लोकतंत्र की संकल्पना में चुनाव वह पद्धति है जिसके द्वारा संसद एवं राज्य विधायिकाओं में जनता का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होता है। भारतीय संविधान में भाग – 15 (अनुच्छेद 324 से 329) निर्वाचन से संबंधित प्रावधानों का उल्लेख करता है जो उचित कानूनों के अधिनियम तथा चुनावों के स्वतंत्र व निष्पक्ष संचालन हेतु उपयुक्त मशीनरी की स्थापना के लिये आधार प्रदान करते हैं। संविधान में 'निर्वाचन' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है जिसमें अधिसूचना जारी होने के साथ प्रारम्भ होने वाली और उम्मीदवार के चुनाव की घोषणा के साथ समाप्त होने वाली चुनाव की पूरी प्रक्रिया सम्मिलित है।' अनुच्छेद 324 चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन व नियंत्रण की शक्ति को निर्वाचन आयोग में निहित करता।

ए. सी. जोस बनाम सिवन पिल्लई मामले में न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया कि अनुच्छेद-324 के अंतर्गत अधीक्षण, निर्देशन व नियंत्रण के संदर्भ में चुनाव आयोग की शक्तियाँ कानून को प्रतिस्थापित करने के बजाय पूरक के रूप में हैं। अत: ये शक्तियाँ संसद द्वारा पारित अधिनियमों अथवा इसके अंतर्गत

निर्मित नियमों पर हावी नहीं होती हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि अनुच्छेद 324 को अनुच्छेद 326-329 के साथ सामंजस्य सहित पढ़ा जाना चाहिए।

न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया कि चुनाव के संचालन को विनियमित करने के लिये आदेश पारित करने की आड़ में चुनाव आयोग विशुद्ध रूप से विधायी गतिविधियों का संपादन नहीं कर सकता है जो केवल संसद तथा राज्य विधायिकाओं के लिये आरक्षित है। मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि निर्वाचन आयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों की प्रतिपूर्ति उस स्थिति में कर सकता है, जहाँ कानून में चुनाव संचालन के दौरान उत्पन्न किसी स्थिति के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रावधान नहीं किया गया है। इन शक्तियों का उपयोग करते हुये आयोग आदर्श आचार संहिता लागू करता है। अनुच्छेद 324 निर्वाचन आयोग के सदस्यों के विषय में प्रावधान करता है। इसमें मुख्य चुनाव आयुक्त तथा राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर निर्धारित संख्या में अन्य चुनाव आयुक्त होंगे और इनकी नियुक्ति संसद द्वारा निर्मित प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी। 4 स्वतंत्र चुनाव संविधान की आधारभूत संरचना का अंग हैं और यह स्वतंत्रता सुनिश्चित करने हेतु अनुच्छेद 324 के अंतर्गत दो उपबंध हैं- 1. मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी प्रकार से तथा उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है, जिस प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को। 2. मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति के बाद, उसकी सेवा की शर्तों में अहितकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। पहला प्रावधान सुनिश्चित करता है कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होने के बावजूद भी मुख्य निर्वाचन आयुक्त राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद पर नहीं होता है और उसे अपनी निर्धारित पदावधि में काम करने की स्वतंत्रता व सुरक्षा प्राप्त है। अनुच्छेद 324 के अंतर्गत 'अधीक्षण, निर्देशन व नियंत्रण' शब्दों को व्यापक संदर्भ में उल्लिखित किया गया है ताकि उसमें ऐसी शक्तियों को भी सम्मिलित किया जा सके जो यद्यपि विशेष रूप से प्रदान नहीं की गई हैं तथापि वे चुनाव को प्रभावी ढंग से सम्पादित करने के लिए आवश्यक हैं।

औपनिवेशिक काल के साम्प्रदायिक व अन्य विभाजनकारी आधारों पर पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को समाप्त करते हुये संविधान ने सार्वभौम वयस्क मताधिकार का प्रगतिशील प्रावधान किया। इस उपबंध ने भारत को दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में स्थापित किया। सार्वभौम मताधिकार के मुद्दे पर संविधान सभा में प्रश्न उठाये गये, लेकिन सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने आशंकाओं के समाधान के रूप में वक्तव्य दिया- ''मेरी राय में हमारे लोगों के पास बुद्धिमत्ता और सामान्य समझ है। उनके पास एक संस्कृति भी है, जिसकी आज के परिष्कृत लोग सराहना नहीं कर सकते हैं, किन्तु वह

मर्यादाओं के हाँसिये में निर्वैर और निर्विकार भाव से सर्वतोन्मुखी समाज के विकास का मार्ग, श्रीराम के उच्च आदर्शों के प्रकाश में सुदृढ़, सुविकसित, सभी के लिए सुखद, निर्भय, लोकमंगलकारी रामराज्य की ओर ले जाता है। श्रेष्ठता और संभावनाओं की कोई अंतिम ऊँचाई नहीं होती। श्री रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा भारतीय जनमानस में एक नवजागरण का रूप ले। इस हर्षोल्लास के वातावरण में जन-जन का मन, पूरा समाज राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के साथ स्वस्थ सामाजिक विकास की ओर कदम बढ़ाता रहे, तो संकल्पित राम-राज्य अवश्यमेव भारत में पुनः संस्थापित हो सकेगा।

ठोस है। यदि इन लोगों को चीजे समझायी जायें, तो ये अपने हितों के साथ-साथ पूरे देश के हितों का आकलन करने में भी सक्षम हैं।

अनुच्छेद 325 एक सामान्य निर्वाचन नामावली का प्रावधान करता है। इसमें कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी आधार पर नामावली में सम्मिलित किये जाने हेतु अपात्र नहीं होगा। अनुच्छेद 325 में उल्लिखित आधारों 'में' 'उम्र' व 'निवास' को सम्मिलित नहीं किया गया है अर्थात् इन दो आधारों पर अपात्र घोषित किया जा सकता है। अनुच्छेद 326 लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के लिए वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचनों का होना सुनिश्चित करता है। सार्वभौम वयस्क मताधिकार व सामान्य निर्वाचक नामावली भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला स्थापित करते हैं। संविधान के पंथनिरपेक्ष चरित्र को बनाये रखने में अनुच्छेद 325 की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

चुनाव के संबंध में विधि निर्माण के प्रावधानों पर दृष्टिपात करें तो अनुच्छेद 327 उपबंध करता है कि संसद समय-समय पर संसद के किसी सदन अथवा राज्य विधानमंडल के चुनावों के संबंध में विधि द्वारा प्रावधान कर सकती है। इस शक्ति का प्रयोग करते हुये, संसद द्वारा जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1952 अधिनियमित किया गया। आर. सी. पौडयाल बनाम भारत संघ मामले में न्यायालय ने कहा कि - ''अनुच्छेद 327 के अंतर्गत बनाये गये परिसीमन कानून, अपनी वैधता के न्यायिक परीक्षण से प्रतिरक्षित हैं और अनुच्छेद 329 (क) के आधार पर सीटों तथा निर्वाचन क्षेत्रों के आवंटन की प्रक्रिया पर किसी भी अदालन में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। संविधान ने चुनावों के सम्बन्ध में कानून में परिवर्तन की आवश्यकता को पहचाना और संसद को कर्त्तव्य के साथ आवश्यक शक्ति भी सौंपी, ताकि जब आवश्यक हो, इस सम्बन्ध में विधायी कार्यवाही द्वारा संशोधन हो सके। हरि प्रसाद मूलशंकर त्रिवेदी बनाम वी.बी. राजू मामले में स्पष्ट किया गया कि अनुच्छेद 327 संसद को मतदाता सूची की तैयारी सहित चुनाव से संबंधित सभी मामलों में विधि-निर्माण की पूरी शक्ति देता है। अनुच्छेद 328 राज्य विधानमंडल को राज्य के चुनावों के सम्बन्ध में विधि-निर्माण की शक्ति देता है लेकिन राज्य-विधायिका को यह देखना होगा कि संसद ने उस विषय के सम्बन्ध में पहले से कोई कानून बनाया है या नहीं। राज्य विधानमंडल की शक्तियाँ संवैधानिक प्रावधानों व संसद द्वारा निर्मित कानून के अधीन हैं।

अनुच्छेद 329 (क) न्यायिक हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। यह उपबंध अनुच्छेद 327 व 328 के अंतर्गत निर्मित कानूनों की सुरक्षा करता है और सुनिश्चित करता है कि इन कानूनों की वैधता पर किसी न्यायलय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। अनुच्छेद 243 ट तथा 243 'य क' पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के निर्वाचन का प्रावधान करते हैं। संवैधानिक प्रावधानों में कुछ संशोधनों की भी आवश्यकता है। आयोग के सदस्यों की अर्हता निर्धारित की जाये। अनुच्छेद 324 (5) को संशोधित करके अन्य चुनाव आयुक्तों को संवैधानिक संरक्षण दिया जाये। संसदीय विपथगमन के दृष्टिगत महत्त्वपूर्ण है कि चुनाव लड़ने हेतु शैक्षिक अर्हताएँ निर्धारित हों। प्रथम आम चुनावों से वर्तमान तक भारत में लोकतंत्र की जो सफल यात्रा निरंतर जारी है, उसमें स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनावों की प्रमुख भूमिका है और इसे सुनिश्चित करने में संविधान का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आवश्यकता है तो इस बात की कि भारतीय लोकतंत्र का 'लोक' और 'तंत्र' दोनों इन प्रावधानों के क्रियान्वयन में अपनी सकारात्मक भूमिका निभायें जिससे लोकतंत्र के महापर्व की शुचिता निरंतर पुष्पित पल्लवित होती रहे। ❑

भारत में 'एक देश एक चुनाव' का इतिहास

भारत में 'एक देश एक चुनाव' का इतिहास देश की राजनीतिक प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण एवं अनुप्रयोग अवधारणा के रूप में हमारे समक्ष है। यह विचार भारतीय राजनीतिक प्रणाली को सुधारने के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जा रहा है। जो लोकतंत्र को मजबूत बनाने का एक प्रमुख उपाय है। कहा जा सकता है कि 'एक देश एक चुनाव' का उद्देश्य है कि सभी लोगों को एक ही समय में चुनावी प्रक्रिया में शामिल किया जाए जिससे राजनीतिक प्रक्रिया को सुधारा जा सके और लोकतंत्र को मजबूत बनाया जा सके।

डॉ. दीक्षिता अजवानी
सहायक आचार्य – इतिहास,
केन्द्रीय संस्कृत
विश्वविद्यालय, दिल्ली,
जयपुर परिसर

भारत चुनावों का देश है। भौगोलिक विस्तार और बहुदलीय संसदीय प्रणाली के दृष्टिकोण से भारत इतना विशाल है कि यहाँ अधिकांशत: चुनाव का समय रहता है। भारत के किसी न किसी क्षेत्र में चुनावी माहौल की सरगर्मियाँ रहती हैं। चुनाव से जहाँ एक ओर लोकतंत्र सशक्त होता है परंतु वहीं लोकसभा, राज्यों की विधानसभाओं एवं स्थानीय स्तर पर ग्राम पंचायत और नगर निकाय के स्तर पर कहीं ना कहीं चुनावी माहौल से सामान्यत: सामान्य कामकाज प्रभावित होता है। अलग-अलग राज्यों में होने वाले चुनाव यदि एक ही साथ आयोजित हों तो चुनाव के कई लाभ बढ़ जाएंगे इसी अवधारणा को 'एक देश एक चुनाव' कहा गया है।

भारत में 'एक देश एक चुनाव' का इतिहास देश की राजनीतिक प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण एवं अनुप्रयोग अवधारणा के रूप में हमारे समक्ष है। यह विचार भारतीय राजनीतिक प्रणाली को सुधारने के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जा रहा है। जो लोकतंत्र को मजबूत बनाने का एक प्रमुख उपाय है। कहा जा सकता है कि 'एक देश एक चुनाव' का उद्देश्य है कि सभी लोगों को एक ही समय में चुनावी प्रक्रिया में शामिल किया जाए जिससे राजनीतिक प्रक्रिया को सुधारा जा सके और लोकतंत्र को मजबूत बनाया जा सके।

भारत में 'एक देश एक चुनाव' की

बात स्वतंत्रता पश्चात पहली बार लोकसभा के चुनाव में 1951-52 में आई थी जब पहले लोकसभा के चुनाव आयोजित किए गए थे। 1951-52 के चुनाव के बाद भारत में प्रत्येक 5 वर्षों में लोकसभा के साथ राज्यसभा और स्थानीय संस्थाओं के चुनाव भी निरंतर आयोजित होते रहे। वर्ष 1952, 1957 1962, 1967 में लोकसभा और राज्यों के विधानसभाओं के चुनाव एक साथ ही संपन्न हुए थे वर्ष 1968-69 में कुछ राज्यों की विधानसभाएँ समय से पहले भंग हो गई थी जिस कारण से 'एक देश एक चुनाव' का सिलसिला बाधित हुआ तब से लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव अलग-अलग आयोजित होने लगे लेकिन इस प्रक्रिया से अनेक समस्याएँ भी उभरी जैसे कि चुनावी खर्च, विपक्ष की स्थिति आदि।

ऐसे में 'एक देश एक चुनाव' का प्रस्ताव पहली बार 1983 में राजनीतिक चर्चाओं में उठाया गया था। उस समय लोकसभा अध्यक्ष एस शिव शंकर ने इसे प्रस्तावित किया था लेकिन तब मूर्त रूप में कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठाया जा सका। साथ ही उसके पश्चात 1999 के विधि आयोग के अध्यक्ष जस्टिस रेड्डी ने भी एक साथ चुनाव करवाने की सिफारिश की थी और कार्मिक लोक शिकायत कानून और न्याय पर विभाग संबंधित संसदीय स्थाई समिति ने दिसंबर 2015 में प्रस्तुत लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव कराने की व्यवहारिकता पर अपनी 79 वी रिपोर्ट में दो चरणों में एक साथ चुनाव कराने की वैकल्पिक और व्यावहारिक पद्धति की सिफारिश की। 2016 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने फिर से 'एक देश एक चुनाव' को बढ़ावा दिया। इसे लागू करने का मुख्य आधार था अर्थव्यवस्था को स्थिर करने, समग्र विकास को बढ़ावा देने और चुनावी खर्च को कम करने की आवश्यकता। अगस्त 2018 में भारत के विधि आयोग द्वारा एक साथ चुनाव पर जारी रिपोर्ट के अनुसार ऐसे एक साथ चुनाव कराने के लिए संविधान लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 और लोकसभा और राज्य विधानसभाओं की प्रक्रिया के नियमों में उचित संशोधन करने की आवश्यकता है साथ ही इसमें कहा गया कि संविधान में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 और लोकसभा और राज्य विधानसभाओं की प्रक्रिया के नियमों में एक साथ चुनाव कराने के लिए उचित संशोधन की आवश्यकता होगी, आयोग ने यह भी सिफारिश की कि उसे कम से कम 50 प्रतिशत राज्यों से अनुसमर्थन प्राप्त हो। हालांकि एक साथ चुनाव कराने के फायदे के संबंध में आयोग ने कहा कि इससे सार्वजनिक धन की बचत होगी, प्रशासनिक व्यवस्था और सुरक्षा बलों पर तनाव कम होगा सरकारी नीतियों का समय पर कार्यान्वयन होगा और विकास गतिविधियों पर प्रशासनिक ध्यान केंद्रित होगा तथा विकास की गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करते हुए भिन्न प्रशासनिक सुधार किये जा सकेंगे। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर तमाम चुनौतियों और संभावनाओं को समझने के लिए पूर्व राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में समिति गठित की गई है। इस समिति के अन्य सदस्य हैं केंद्रीय

गृहमंत्री अमित शाह, कांग्रेस नेता अधीर रंजन चौधरी, पूर्व नेता प्रतिपक्ष गुलाम नबी आजाद, 15वें वित्त आयोग के अध्यक्ष एनके सिंह, लोकसभा के पूर्व महासचिव डॉक्टर सुभाष सी. कश्यप, वरिष्ठ वकील हरीश साल्वे और पूर्व मुख्य सतर्कता आयुक्त संजय कोठारी। राष्ट्रीय हितों की प्राथमिकता, बड़े फैसले लेने की क्षमता, चुनावी खर्च में भारी कमी, प्रशासनिक व्यवस्था की दक्षता में वृद्धि और क्षेत्रीय अलगाववाद पर अंकुश इत्यादि लाभों के कारण 'एक देश एक चुनाव' को स्वीकार करना महत्त्वपूर्ण सा हो गया है और क्योंकि भारत को स्वतंत्रता के पश्चात बहुत लंबे समय तक एक देश एक चुनाव का अच्छा अनुभव है। अपने पूर्व के अनुभवों से सीखते हुए 'एक देश एक चुनाव' के सिद्धांत को मजबूती के साथ मूर्त रूप में बदला जा सकता है।

कई विकसित देशों ने चुनाव के अतिरिक्त भार से स्वयं को मुक्त किया है, ऐसा उन्होंने संवैधानिक नियमों के तहत किया है। दक्षिणी अफ्रीका में राष्ट्रीय और प्रांतीय विधानसभाओं के चुनाव 5 साल के लिए एक साथ होते हैं और नगर पालिका चुनाव 2 साल बाद होते हैं। ब्रिटेन में ब्रिटिश संसद और उसके कार्यकाल को स्थिरता प्रदान करने के लिए निश्चित अवधि सांसद अधिनियम 2011 पारित किया गया। अमेरिका में चुनाव का दिन तय है। स्वीडन में राष्ट्रीय विधायिका, प्रांतीय विधायिका तथा स्थानीय निकायों के चुनाव चार साल के लिए एक निश्चित तिथि यानी सितंबर के दूसरे रविवार को होते हैं वहीं जर्मनी के संघीय गणराज्य के लिए बुनियादी कानून का अनुच्छेद 67 विश्वास के रचनात्मक वोट का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है।

'एक देश एक चुनाव' की अवधारणा न्याय के मूल्यों को प्रोत्साहित करती है और राष्ट्र की विकास की प्रक्रिया को

मजबूत करती है। यह नीति राजनीति के स्तर को उठाने में भी मददगार साबित होगी क्योंकि इससे वोट बैंक और तुष्टिकरण की राजनीति कमजोर होगी। विकास के मुद्दे को बल मिलेगा। राष्ट्रीय हित मुख्य मुद्दा बनेगा। मतदाता पहले से अधिक सक्रिय होंगे, क्योंकि उन्हें 5 साल में केवल एक ही बार वोट डालने का अवसर मिलेगा। जहाँ राज्य सरकार वित्तीय परेशानियों का शिकार होने से बचेगी, वहीं निर्वाचित प्रतिनिधियों की खरीद फरोख्त में उत्तरोत्तर कमी आएगी। क्योंकि निश्चित अंतराल पर चुनाव कराने से उनके लिए व्यक्तिगत लाभ हेतु दल बदलने अथवा नया गठबंधन बनाना कठिन होगा। यह नीति एक सशक्त और संपन्न राष्ट्र की नींव सिद्ध होगी जो लोगों को एकता, समरसता और प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके माध्यम से लोगों को अपने देश के सुधार और विकास में अपना योगदान देने का अवसर मिलता है। इस प्रकार एक देश एक चुनाव का सिद्धांत न केवल राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी राष्ट्र के आधारभूत विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ❑

'एक देश एक चुनाव' की अवधारणा न्याय के मूल्यों को प्रोत्साहित करती है और राष्ट्र की विकास की प्रक्रिया को मजबूत करती है। यह नीति राजनीति के स्तर को उठाने में भी मददगार साबित होगी क्योंकि इससे वोट बैंक और तुष्टिकरण की राजनीति कमजोर होगी। विकास के मुद्दे को बल मिलेगा। राष्ट्रीय हित मुख्य मुद्दा बनेगा। मतदाता पहले से अधिक सक्रिय होंगे, क्योंकि उन्हें 5 साल में केवल एक ही बार वोट डालने का अवसर मिलेगा।

The Rupee Toll of Frequent Polls : India's Electoral Finance Conundrum

Amit Halder

Assistant Professor,
Department of Botany
Nabadwip Vidyasagar
College, West Bengal

One Nation, One Election (ONOE) is an idea which has been part of the growing discussions in recent times in India. It proposesto synchronize the Lok Sabha and State Assembly elections to be held simultaneously and streamline electoral process to reduce the ongoing burden on resources and to enhance the governance efficiency both at union and state levels in the country.Elections are currently held separately for the national parliament and each of India's 28 states and 8 union territories, with different poll schedules based on the respective terms of the legislative bodies. One of the biggest challenges facing the Indian electoral system is the massive cost involved in conducting frequent polls for the national parliament (Lok Sabha), state legislative assemblies, and local bodies across the length and breadth of the country. With elections being held separately based on differing tenures, the economic burden adds up significantly for both the exchequer and political parties' year after year.

The cost of conducting elections in India has significantly increased over time. Between 2014 and 2019, the total cost of conducting elections in India was ₹ 1,47,594 crores (US$19.4 billion), reflecting a substantial financial burden on the public exchequer. As per estimates by the Election Commission of India (ECI), the national elections for the 17th Lok Sabha in 2019 alone cost about ₹ 8,000 crores ($1.1 billion) involving over 10 million poll officials. Looking ahead to the upcoming general elections in April and May 2024, political parties and candidates are expected to spend more than 1.2 trillion rupees (US$14.4 billion), making it potentially the most expensive election in Indian history. This estimate represents a significant escalation in election expenses compared to previous years, indicating a notable rise in the cost of conducting elections in India.

Apart from the logistical costs of setting up polling booths, transporting personnel and equipment, energy consumption, security arrangements etc., recurring expenses like electronic voting machine (EVM) procurement and replacements consume a major portion of the poll budget. The ECI spent ₹ 1,952 crores (US$265 million) just to purchase nearly 1 million EVMs in 2019.The financial strain is exacerbated by the sheer scale and complexity of holding polls in the world's largest democracy, comprising over 900 million voters across 1.1 million polling stations scattered over 8,000 urban and 600,000 rural territories. The geographical and socio-cultural diversity means every region requires to be customized outreach and expenditure tailored to its

unique needs.

The escalating costs aren't limited to the government either. India's major national and regional political parties also end up spending huge sums on campaigning, travel, rallies and advertising during each election cycle. Overall expenditure by parties is estimated to have crossed ₹ 60,000 crores (US$8.1 billion) in the 2019 polls alone. Although parties receive some public financing and private funding but this also comes with strict caps limiting individual candidate spending, often leading to violations and the influence of undocumented black money in elections.While being the bedrock of a vibrant democracy, the surging expenditure involved in frequent elections poses a significant fiscal strain on government resources as well as political parties' finances. Reform advocates have therefore argued for exploring options like synchronizing all polls together to significantly reduce redundant expenditure.

The high cost of conducting elections in India has a significant impact on the representation of marginalized communities in Indian politics. The exorbitant expenses associated with elections create financial barriers for candidates from marginalized communities who may lack access to substantial funding. This financial hurdle can limit the participation of candidates from these communities, reducing their representation in the political arena. This often results in candidates from affluent backgrounds dominating the electoral landscape, leading to the underrepresentation of marginalized communities in decision-making positions. This lack of diverse representation can perpetuate inequalities and hinder the inclusion of marginalized voices in governance. Candidates from marginalized communities may struggle to mobilize resources for election campaigns, including funds for advertising, campaign events, and outreach activities. This limited access to resources can impede their ability to compete effectively with well-funded candidates, further marginalizing their representation in politics. This kind of scenario erodes the democratic principle of equal participation and representation. Ultimately, it undermines the democratic ideals of inclusivity, diversity, and equitable representation.

In his 2016 Independence Day speech, Prime Minister Narendra Modi floated the idea of holding all elections simultaneously as a way to reduce these public disparities, logisticinefficiencies and public expenditures. The government subsequently formed a parliamentary committee to examine the proposal's merits, challenges, and required constitutional amendments. Analystsvocals about ONOE would lead to tremendous institutional cost savings by avoiding repeated expenditures on personnel, equipment, security, campaigning, and advertising for separate state and national polls. It is estimated that ONOE could save over 40 billion rupees (US$500 million) that could be reallocated to development programs.

Analysts vocals about ONOE would lead to tremendous institutional cost savings by avoiding repeated expenditures on personnel, equipment, security, campaigning, and advertising for separate state and national polls. It is estimated that ONOE could save over 40 billion rupees (US$500 million) that could be reallocated to development programs.

Holding simultaneous elections for both the Lok Sabha and state assemblies can significantly reduce the financial burden associated with repeated campaigning and election logistics, making the electoral process more cost-effective. ONOE could lead to more stable governments at both the state and central levels, providing longer periods for policy implementation without constant disruptions caused by frequent elections. With fewer elections taking place, voters may be more motivated to participate in the democratic process. The reduced frequency of voting could lead to higher voter turnouts and increased engagement in the electoral process, strengthening democratic participation.Political parties and candidates can allocate their resources, including time and manpower, more efficiently when elections are held simultaneously. This optimized resource allocation can streamline campaigns and enhance the effectiveness of electoral strategies.By reducing the distraction of frequent elections, politicians and governments can focus more on governance and policymaking. This shift towards long-term policy formulation rather than short-term populism aimed at electoral gains could lead to better governance outcomes and policy focus.Implementing "One Nation, One Election" in India has the potential to bring about these benefits, promoting efficiency in governance, reducing costs associated with elections, enhancing voter engagement, and fostering stability in policy implementation across different levels of government. ❑

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 के प्रभावी क्रियान्वयन में शिक्षक की भूमिका (उच्च शिक्षा के विशेष संदर्भ में)

प्रो. विजय वशिष्ठ
सेवानिवृत्त प्राचार्य,
कॉलेज शिक्षा, राजस्थान

"Mind is never a problem, but mind set is" Education must focus on "How to think" rather than "what to think".
- Narendra Modi
(P.M. of Bharat)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुच्छेद 9.1 में यह कहा गया कि ''उच्चतर शिक्षा मनुष्य और साथ ही सामाजिक कल्याण के विकास में अति आवश्यक भूमिका निभाती है। एक राष्ट्र के आर्थिक विकास और आजीविका का स्थायित्व देने में भी उच्चतर शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। जैसे-जैसे भारत ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था और समाज की ओर बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे और अधिक भारतीय युवा उच्चतर शिक्षा की ओर बढ़ेंगे।''

इसी नीति में यह कहा गया-

"We must therefore empower our youth with creative and critical thinking and ethical reasoning apart from capabilities across a range of disciplines including arts, science, humanities, Professional, Technical and Vocational. We must create a vibrant India that will be ready to face the global challenges of the west century and become developed nation by 2020.

भारत में दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा शिक्षा का ढाँचा है। लेकिन मानव विकास के मापदण्ड में हम आज भी पीछे हैं। इसका कारण है हमारी पूर्ववर्ती शिक्षा नीति। हमने शिक्षा का समग्र विचार कभी किया ही नहीं। पहली बार इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समग्र रूप से शिक्षा के विषय में विचार किया गया। अगले दशक में भारत शिक्षा की दृष्टि से भी दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध करवाने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा।

ज्ञान के क्षेत्र में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। हमें इन परिवर्तनों को स्वीकार करना होगा तथा युवाओं को इसके लिए तैयार करना होगा। रोजगार और वैश्विक परिस्थितियों में तीव्र परिवर्तनों की वजह से यह जरूरी हो गया है कि छात्र जो कुछ सिखाया जा रहा है उसे तो सीखे ही, साथ ही सतत् सीखते रहने की कला भी सीखें। छात्र समस्या समाधान और तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखे, विविध विषयों के बीच अंत:सम्बन्ध को देख पाये, कुछ नया सोच पाये और नयी जानकारी को बदलती परिस्थितियों में उपयोग में ला पाये।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्राचीन भारतीय ज्ञान और विचार परम्परा के आलोक में तैयार की गयी है। ज्ञान, प्रज्ञा

और सत्य की खोज को भारतीय विचार परम्परा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता रहा है। हमारी विचार परम्परा में यह माना जाता है कि कोई भी मनुष्य अयोग्य नहीं है। (अयोग्यो पुरुषो न अस्ति) साथ ही यह भी उद्घोषित। किया गया कि व्यक्ति को आजीवन अध्ययन करते रहना चाहिए। भारतीय परम्परा यह मानकर चलती है कि विद्या व्यक्ति को विनय प्रदान करती है। (विद्या ददाति विनियम्)(सा विद्याया विमुक्तये) भारतीय परम्परा के अनुसार पर्यावरण संरक्षण तथा सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा शिक्षा के अभिन्न अंग हैं। प्राचीन भारत में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे विश्वस्तरीय संस्थानों में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में ऊंचे प्रतिमान स्थापित किये थे। इसी शिक्षा व्यवस्था ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, शंकरदेव, मैत्रेयी, गार्गी जैसे अनेकों महान विद्वानों को तेयार किया। भारतीय संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक महत्त्व की इस समृद्ध विरासत को आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए न केवल सहेज कर संरक्षित रखने की आवश्यकता है बल्कि हमारी शिक्षा व्यवस्था द्वारा उस पर शोध कार्य किया जावे।

इस नीति के दो मुख्य उद्देश्य बताये गये-

1. युवाओं में रोजगार एवं उद्यमशीलता का विकास ?
2. जो न केवल जीवनयापन के योग्य बने, बल्कि राष्ट्र के लिए भी योगदान दे सके।
3. युवाओं में सामाजिक एवं जीवन मूल्यों का विकास।

इस नीति के आधारभूत सिद्धान्त ?

शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मक कल्पना शक्ति, नैतिक मूल्य का आधार हो। इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है जो कि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान करें।

1. शिक्षा मूल्य आधारित हो। हम शिक्षा तो दे रहे हैं जिससे जीवन स्तर तो सुधर रहा है लेकिन जीवन मूल्य गिर रहा है। आज पढ़े-लिखे युवक के बारे में यह धारणा है कि उसे भारतीय जीवन मूल्यों का ज्ञान नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षण संस्थाओं में जीवन मूल्यों की भी शिक्षा दी जावे। यह केवल पाठ्यक्रमों में सुधार करके नहीं किया जा सकता, इसके लिए वैसे शिक्षक भी चाहिए।

शिक्षा मातृभाषा में हो। माँ, मातृभाषा एवं मातृभूमि का कोई विकल्प नहीं हो सकता। हमारे देश में प्राथमिक कक्षाओं में ही अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने का विकास का मापदण्ड मान लिया गया। हमने हमारी मातृभाषा की उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दी को राजभाषा बना दिया गया। हिन्दी माध्यम से पढ़ने-पढ़ाने को निम्न स्तर का माना जाने लगा। इस नीति में राष्ट्रीय भाषाओं में शिक्षा को महत्त्व दिया गया है। विश्व के शैक्षिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्रों में उनकी मातृभाषा में शिक्षा दी जाती है। गांधी जी ने कहा था ''यदि मुझे कुछ समय के लिए निरंकुश शासन बना दिया जाये तो मैं विदेशी भाषा में शिक्षा को तुरन्त बंद कर दूँगा।'' इस शिक्षा नीति में भारतीय भाषाओं के माध्यम से अध्ययन, अध्यापन एवं शोध को महत्त्व दिया गया है। भारतीय भाषाओं में शिक्षा प्रदान करने से ही ''सबके लिए शिक्षा'' का लक्ष्य पूरा किया जा सकता है।

शिक्षा स्वायत्त हो, प्राचीन भारत में शिक्षा स्वायत्त थी। विश्वविद्यालय अपनी-अपनी पद्धति से सभी विषयों की शिक्षा देते थे। हमारे आचार्यों ने तो यह घोषणा कर रखी थी कि ''दुनिया के लोगों भारत में आओ-तुम्हें जिस विषय का ज्ञान चाहिए वो उपलब्ध कराया जायेगा। अंग्रेजों के शासनकाल में भारत में शिक्षा को सरकार के अधीन कर दिया गया। अतः शिक्षा स्वायत्त होनी चाहिए। विद्या केन्द्रों पर समाज का नियंत्रण हो, सरकार का नहीं।

शिक्षा परिवार की भावना - शिक्षक-शिक्षार्थी एवं शिक्षा प्रशासन यह एक परिवार है एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। यह भाव होना चाहिए। आज शैक्षिक परिसरों में संघर्ष का वातावरण दिखायी देता है। विद्यार्थी, शिक्षक एवं शिक्षा प्रशासन सभी के अपने-अपने हित-संघ बने हुए हैं जिनके हित एक-दूसरे के विरोधी हैं। यह स्थिति उचित नहीं है। शिक्षा एक परिवार है, जहाँ हम परस्पर विरोधी नहीं बल्कि सहयोगी हैं। आत्मीयतापूर्ण व्यवहार ही परिवार का आधार है प्रयोगात्मक एवं सैद्धान्तिक संतुलन - हमारे पाठ्यक्रम मात्र सैद्धान्तिक हैं। प्रयोगात्मक कार्य केवल

प्रयोगशाला तक सीमित हैं। जिससे छात्र अनुभूत ज्ञान से वंचित रहते हैं। वाणिज्य स्नातक बैंक के बारे में जानते हैं. लेकिन व्यवहार में उन्हें बैंक में खाता खोलना भी नहीं आता। कृषि स्नातक पौधे और पेड़ में अन्तर नहीं बता पाते। डेयरी का स्नातक गाय का दूध निकालना नहीं जानते अत: यह आवश्यक हो कि प्रायोगिक एवं व्यवहारिक ज्ञान के समावेश के साथ-साथ व्यवहार एवं सिद्धान्त का संतुलन होना चाहिए।

विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय - विज्ञान एवं अध्यात्म में समन्वय होना चाहिए। हमारी शिक्षा हमें विज्ञान की ओर तो अग्रसर कर रही है लेकिन अध्यात्म से दूर कर रही है। सामान्यत: विज्ञान एवं अध्यात्म में ऋणात्मक सह-संबंध है। लेकिन यह जरूरी है कि इन दोनों में समन्वय अन्यथा वैज्ञानिक विकास विनाश का भी कारण बन सकता है।

शिक्षा का एकात्म स्वरूप - हमारे देश में शिक्षा पर समग्रता से विचार नहीं हुआ। हमने खण्ड-खण्ड रूप में विचार किया। परिणाम स्वरूप छात्रों का सर्वांगीण विकास नहीं हुआ। हमारी विविधता को विभाजन का माध्यम बनाने की बजाय एकता का माध्यम बनाना होगा। एकजन एक राष्ट्र, एक संस्कृति मनोभाव बनना चाहिए, परम्परा एवं आधुनिकता में समन्वय होना चाहिए।

शिक्षा व्यवसाय नहीं सेवा का माध्यम हो - हमारे देश में शिक्षा को कभी भी व्यवसाय नहीं माना गया। वर्तमान में शिक्षा एक व्यवसाय हो गयी है। शिक्षा के क्षेत्र में सभी को वस्तु मान लिया गया। अत: मनुष्यों के साथ भी वस्तुगत व्यवहार किया जाने लगा।

छात्रों और शिक्षकों का सम्बन्ध गुरु शिष्य के स्थान पर ग्राहक एवं व्यवसायी जैसा हो गया। शिक्षक और प्रबंधक का सम्बन्ध मजदूर और मालिक जैसा हो गया। शैक्षिक संस्थाओं में आचार्य कर्मचारी/ नौकर बन गये। शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया जिसके कारण निजीकरण को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। बड़े बड़े शैक्षणिक संस्थान/ विश्वविद्यालय खोले जाने लगे जिनमें ऊँची फीस लेकर प्रवेश दिया जाने लगा। समाज ने इनको स्टेटस सिम्बल मान लिया। इस स्थिति पर नियंत्रण लगाया जाना चाहिए।

वर्तमान में उच्च शिक्षा प्रणाली की कुछ प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार हैं -

1. खंडित उच्चतर शैक्षिक पारिस्थितिकी तंत्र।
2. कौशल विकास एवं सीखने के परिणामों पर कम बल।
3. विषयों का कठोर विभाजन।
4. सीमित शिक्षक एवं संस्थागत स्वायत्तता।
5. उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में अवेयरनेस एवं नेतृत्व क्षमता का अभाव।
6. योग्यता आधारित केरियर प्रबंधन एवं संकाय और संस्थागत नेतृत्व का अभाव।
7. बहुत सारे सम्बद्ध विश्वविद्यालय जिनके परिणाम स्वरूप अवर स्नातक (Under graduate) शिक्षा के निम्न मापदण्ड।
8. एक विश्वविद्यालय के सम्बद्ध महाविद्यालयों की अधिक संख्या।
9. स्नातक स्तर तक अद्यतन पाठ्यक्रमों का अभाव।
10. उपयुक्त संस्थागत ढांचा यथा परिसर, प्रयोगशाला, पुस्तकालय आदि का अभाव।
11. एक प्रभावी नियामक प्रणाली का अभाव।

एक अच्छी शैक्षणिक संस्था वह है जिसमें प्रत्येक छात्र का स्वागत किया जाता है और उसकी देखभाल की जाती है, जहाँ एक सुरक्षित और प्रेरणादायक शिक्षण वातावरण मौजूद होता है, जहाँ सभी छात्रों को सीखने के लिए विविध प्रकार के अनुभव उपलब्ध कराये जाते हैं और जहाँ सीखने के लिए अच्छे, बुनियादी ढाँचे और संसाधन उपलब्ध हैं। ये सब हासिल करना प्रत्येक शिक्षण संस्थान का लक्ष्य होना चाहिए।

शिक्षक समुदाय की भूमिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 का सफल क्रियान्वयन शैक्षिक समुदाय पर निर्भर करता है। इस नीति में संकाय के सम्बन्ध में कहा गया है

"Quality of teaching and research in H.E.I.S depends entirely on the quality and engagement of their faculty. The policy recognizes that an Empowered faculty with high competence and deep commitment for excellence in teaching and research is the need of the hour for India, there is also a heavy shortage of teachers in HEIs across the country."

इससे यह स्पष्ट है कि इस नीति का क्रियान्वयन योग्य, सक्षम एवं प्रतिबद्ध संकाय सदस्यों पर निर्भर करता है। हमारे उच्च शिक्षण संस्थाओं में न केवल योग्य संकाय सदस्याओं का अभाव है बल्कि जो हैं वे भी अस्थायी एवं संविदा आधारित हैं। संकाय सदस्य ज्ञान की गति के साथ आगे बढ़ने में अपने आपको सक्षम नहीं बना पा रहे हैं।

उच्चतर शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में संकाय सदस्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संकाय सदस्यों की भर्ती, उनकी सेवा शर्तें एवं वेतन भत्तों में अपेक्षित सुधार किये गये हैं। संकाय सदस्यों में प्रेरणा और उत्साह की कमी से संबंधित कारणों को सम्बोधित किया जाना चाहिए जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक संकाय सदस्य अपने छात्रों, संस्थान ओर पेशे के प्रति और अधिक उत्साह के साथ प्रसन्नता पूर्वक जुड़े। उच्चतर शिक्षण संस्थनों में सर्वोत्कृष्ट प्रेरित और सक्षम संकाय सदस्यों को सुनिश्चित करने के लिए इस नीति में कुछ सुझाव दिये गये हैं -

शिक्षण संस्थानों में बुनियादी सुविधा स्वच्छ पेयजल, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ? कक्षा-कक्ष, स्वच्छ शौचालय, प्रेरणादायक परिसर आदि होने चाहिए। छात्र-शिक्षक अनुपात भी सन्तुलित होना चाहिए। प्रत्येक संकाय सदस्य की नियुक्ति एकल संस्थान में की जानी चाहिए जिससे कि वह अपने संस्थान के प्रति प्रतिबद्धता महसूस कर सके। संकाय सदस्यों को पाठ्यपुस्तकों के चयन, असाइनमेंट और आकलन में स्वतंत्रता दी जायेगी। संकाय सदस्यों को रचनात्मक शिक्षण, शोध और उनके अनुसार बेहतर कार्य के लिए प्रेरित और सशक्त किया जायेगा। उत्कृष्ट कार्य के लिए पुरस्कार, पदोन्नति, कार्यों की सराहना के साथ ही साथ संस्थागत नेतृत्व में उचित स्थान सुनिश्चित करके बदलवा दिया जायेगा। उत्कृष्टता एवं नवाचारों को बढ़ावा देने के लिए संकाय सदस्यों के लिए एक फास्ट ट्रेक पदोन्नति प्रणाली सुनिश्चित की जायेगी। संस्था के नेतृत्वकर्ता ऐसी उत्कृष्टता की संस्कृति के निर्माण को ध्यान में रखेंगे, जो कि सभी संकाय सदस्यों और नवोन्मेषी शिक्षण-शोध, संस्थागत और सामुदायिक कार्यों की ओर प्रेरित एवं प्रोत्साहित करें। सरकार द्वारा उठाये जाने वाले कदम प्रत्येक संस्थान में संकाय सदस्यों की नियुक्ति, पदोन्नति एवं कैरियर डवलपमेंट के लिए एक स्पष्ट योजना बनायी जायेगी।

1. एस.ई.डी. जी. (SEDGs) की शिक्षा के लिए समुचित सरकारी निधि का निर्धारण किया जायेगा।

2. उच्चतर जीईआर (GER) तथा एस. ई. डी. जी. के लिए स्पष्ट लक्ष्यों का निर्धारण।

3. उच्चतर गुणवत्ता युक्त ऐसे उच्चतर शिक्षण संस्थानों का निर्माण और विकास करना जो स्थानीय भाषाओं में या द्विभाषी रूप में शिक्षण कराये।

4. सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही तरह के उच्चतर शिक्षण संस्थानों में एस.ई.डी. जी. को अधिक वित्तीय सहायता और छात्रवृत्ति उपलब्ध कराना।

5. बेहतर भागीदारी और सीखने के परिणामों के लिए प्रौद्योगिकी का निर्माण और विकास।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लागू करने के लिए उच्चतर शिक्षण संस्थानों को ये कार्य करने होंगे-

पाठ्यक्रमों को अधिक समावेशी बनाना (Develop a more inclusive curriculum)

प्रवेश प्रक्रिया को अधिक समावेशी बनाना (Make admission process more inclusive) भारतीय भाषाओं और द्विभाषी रूप से पढ़ाये जानेवाले अधिक डिग्री पाठ्यक्रम विकसित करना (Develop programmes that are taught in local languages)।

परिसर में दिव्यांग जनों के अनुकूल सुविधायें उपलब्ध कराना (Ensure all facilities are disabled friendly)

वंचित शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले छात्रों के लिए ब्रिज कोर्स बनाना (Arrange bridge courses for disadvantaged students)।

सभी विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त सलाह और परामर्श कार्यक्रम बनाना (Provide suitable counselling and mentoring programmes)।

भेदभाव और उत्पीड़न के विरुद्ध बनाये गये सभी नियमों को सख्ती से लागू करना (Strictly enforce all non-discrimination and anti-harassment rules)।

एसईडीजी की बढ़ती भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए विशिष्ट योजना का निर्माण करना (Include specific plan of action for increasing the participation of SEDGs) संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि न्याय, समावेशन, गुणात्मक शिक्षक एवं शिक्षा के साथ-साथ संसाधनों के समुचित उपयोग को महत्त्व देने वाली छात्रों की सहजात रचनात्मक प्रतिभा में विश्वास रखते हुए कला, साहित्य एवं क्रीड़ा के प्रति उन्मुख हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भविष्य के भारत की शिक्षा को वास्तविक रूप में 'भारतीय रूप' देने के लिए कृत संकल्प है।

इस नीति में एक अच्छी शैक्षणिक संस्था की परिकल्पना की गयी है।

एक अच्छी शैक्षणिक संस्था वह है जिसमें प्रत्येक छात्र का स्वागत किया जाता है और उसकी देखभाल की जाती है, जहाँ एक सुरक्षित और प्रेरणादायक शिक्षण वातावरण मौजूद होता है, जहाँ सभी छात्रों को सीखने के लिए विविध प्रकार के अनुभव उपलब्ध कराये जाते हैं और जहाँ सीखने के लिए अच्छे, बुनियादी ढाँचे और संसाधन उपलब्ध हैं। ये सब हासिल करना प्रत्येक शिक्षण संस्थान का लक्ष्य होना चाहिए। साथ ही विभिन्न संस्थानों के बीच और शिक्षा के हर स्तर पर परस्पर सहज जुड़ाव और समन्वय आवश्यक है।

भारत की आजादी के 100 वें वर्ष (2047) तक भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाना है इसके लिए यह आवश्यक है कि भारत में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली होनी चाहिए जो किसी से पीछे नहीं, एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था जहाँ किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठ भूमि से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षार्थियों को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध हो।

आओ हम सब मिलकर इस दिशा में प्रयत्न करें और स्वामी विवेकानंद के इस कथन को साकार करें। उन्होंने कहा था -

Education is a process of man-making and charactering building.

अंत में यह कहना चाहूँगा-

The deeper we dig the well, the more water we get, the more we learn, the more wisdom we acquire.

इस नीति को क्रियान्वित करने में हम सबकी सक्रिय भूमिका आवश्यक है। हमें प्रधानमंत्री के विकसित भारत के सपने को साकार करना है अत: यह आवश्यक है कि हम सब मिलकर प्रभावी एवं परिणामदायक प्रयास करें। ❑

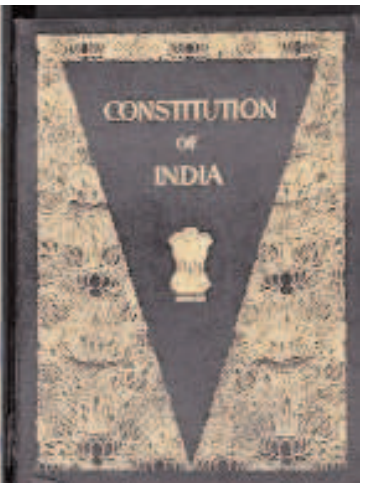

धर्म व संविधान परस्पर विरोधी नहीं, अपितु पूरक हैं

प्रणय कुमार
शिक्षाविद एवं
वरिष्ठ स्तंभकार

लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका प्रहरी की होती है। व्यवस्था के सभी घटकों की निगरानी का दायित्व उस पर ही होता है। न्यायपालिका के शीर्ष पदों पर आसीन व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सार्वजनिक जीवन में अपनी वाणी एवं आचरण के प्रति अतिरिक्त सजगता एवं सतर्कता बरतें। उनसे ऐसे किसी वक्तव्य की आशा नहीं की जाती जो विवादों को तूल दे, जो राष्ट्र की मूल, परंपरागत व सांस्कृतिक अस्मिता एवं संवैधानिक मान्यताओं के प्रतिकूल हो। ऐसे वक्तव्य वर्तमान के साथ-साथ देश एवं समाज के दूरगामी हितों को भी बाधित एवं प्रभावित करते हैं। परंतु दुर्भाग्य से पिछले दिनों कुछ न्यायाधीशों के ऐसे वक्तव्य सामने आए, जिन्हें पढ़-सुनकर यही प्रतीत हुआ कि संबंधित विषय को गहराई एवं समग्रता से समझे-विचारे बिना वे शीघ्रता अथवा उतावलेपन में दिए गए हों। जिम्मेदार पदों पर बैठे लोगों को सतही-सरलीकृत निष्कर्ष एवं लोकप्रियता के लोभ-आकर्षण आदि से यथासंभव बचना चाहिए। बीते 4 मार्च को पुणे में एक अदालत के भवन की आधारशिला रखते हुए 'भूमि-पूजन' समारोह के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश अभय एस ओका ने कहा कि न्यायालय-परिसर में आयोजित किसी भी कार्यक्रम में पूजा-अर्चना या दीप-प्रज्वलन जैसे अनुष्ठान बंद कर देने चाहिए। उनका कहना था कि इसकी बजाय न्यायालय के किसी भी आयोजन में संविधान की प्रस्तावना की प्रति रखनी चाहिए और उसी के आगे सिर झुकाना चाहिए। इसी कार्यक्रम में न्यायाधीश बीआर गवई ने जस्टिस ओका के मत से पूर्ण एवं मुखर सहमति जताते हुए कहा कि ''किसी धर्म विशेष की पूजा करने के स्थान पर हमें अपने हाथों में फावड़ा लेकर नींव के लिए निशान लगाना चाहिए और दीप-प्रज्वलन की बजाय पौधों को पानी देकर कार्यक्रम का उद्घाटन करना चाहिए। इससे पर्यावरण के मामले में समाज में एक अच्छा संदेश जाएगा।'' इससे एक सप्ताह पूर्व, 28 फरवरी को सेवानिवृत्त न्यायाधीश कुरियन जोसेफ ने कहा था कि सर्वोच्च न्यायालय के ध्येय-वाक्य 'यतो धर्मस्ततो जयः' को बदल देना चाहिए, क्योंकि सत्य ही संविधान है, जबकि धर्म सदा सत्य नहीं होता। उन्होंने प्रश्न उठाया कि जब अन्य सभी उच्च न्यायालयों और राष्ट्रीय संस्थानों में आदर्श वाक्य 'सत्यमेव जयते' है तो सर्वोच्च न्यायालय का आदर्श वाक्य भिन्न क्यों है? रोचक है कि वर्ष 2018 में एक संगोष्ठी में जस्टिस जोसेफ ने कहा था कि ''कैथोलिक चर्च ने हमेशा दुनिया भर की अन्य परंपराओं एवं विश्वासों को अपने-आप में आत्मसात किया है। यह हमारे संविधान की प्रस्तावना की तरह ही है, जो हम (वी) शब्द से प्रारंभ होती है।'' प्रकारांतर से यहाँ उन्होंने कैथोलिक चर्च की तुलना भारत के संविधान की प्रस्तवना से की थी।

सामान्यतः ऐसे तर्कों एवं वक्तव्यों के मूल में या तो रिलीजन, मजहब एवं संप्रदाय आदि को धर्म का पर्याय मानने की भूल होती है या सेकुलरिज्म की भ्रामक एवं मिथ्या अवधारणा। हमें याद रखना होगा कि 'सेकुलरिज्म' मूलतः

भारतीय संविधान का हिस्सा नहीं था। इसे आपातकाल के दौरान 42वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से सम्मिलित किया गया था, जब पूरा विपक्ष जेल में था। स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि संविधान-परिषद ने 'सेकुलरिज्म' को प्रस्तवना में सम्मिलित नहीं करने का विकल्प क्यों चुना था और बाद में ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ निर्मित हुईं कि इसे रातों-रात सम्मिलित करने की विवशता आ पड़ी? उल्लेखनीय है कि संविधान की मूल प्रति में शताब्दियों से चली आ रही राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परंपरा की महत्ता एवं अस्मिता को रेखांकित करने के लिए 22 चित्र थे, जिनमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, श्रीकृष्ण जैसे सार्वकालिक महानायकों से लेकर हनुमान जी, लक्ष्मण जी, भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, राजा भरत, महाराज विक्रमादित्य, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविंद सिंह, महारानी लक्ष्मीबाई, यज्ञ कराते वैदिक ऋषि आदि प्रमुख हैं। मौलिक अधिकार भाग -3 में श्रीराम, सीता जी एवं लक्ष्मण जी का चित्र है, जो लोगों के अधिकारों के सर्वोच्च संरक्षक के रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की श्रद्धेय स्थिति की सार्वजनिक अभिव्यक्ति एवं स्वीकृति है। यहाँ यह बताने की अलग से आवश्यकता नहीं कि संविधान-परिषद के तत्कालीन सदस्य, 'सेकुलरिज्म' के आज के तथाकथित झंडाबरदारों की तुलना में कहीं अधिक 'सेक्युलर' तथा नीति एवं नीयत को लेकर अत्यधिक स्पष्ट, निष्पक्ष एवं पारदर्शी थे। क्या यह सत्य नहीं कि भारत अपनी मूल प्रकृति एवं स्वभाव से ही पंथनिरपेक्ष है? क्या इसमें भी कोई दो राय हो सकती है कि भारत पंथनिरपेक्ष रह सका है, क्योंकि यहाँ हिंदू बहुसंख्या में हैं? सच यही है कि संविधान की प्रस्तावना में 'सेकुलरिज्म' शब्द जुड़ने के सदियों पूर्व से ही सनातन संस्कृति की कोख में सह-अस्तित्व की कामना व भावना पलती रही है।

वस्तुतः 'सेकुलरिज्म' एक ऐसी अवधारणा है, जिसे यूरोप से भारत में आयातित किया गया है। इस अवधारणा का जन्म यूरोप में मध्य युग में हुआ था, जब चर्च और राज्य सत्ता अपने-अपने प्रभाव व कार्य-क्षेत्र के लिए आपस में टकराई थी। वहाँ की परिस्थिति विशेष के लिए वह एक उचित समाधान रहा होगा, परंतु हमारे यहाँ कभी भी मजहबी राज्य नहीं था, न ही राज्य-सत्ता व धर्मसत्ता के मध्य कभी कोई टकराव ही देखने को मिला, इसलिए उस संदर्भ में सेकुलरिज्म की बात ही अर्थहीन है। हमारे देश में धर्माचार्यों के शासन की नहीं, प्रत्युत अनुशासन की परंपरा अवश्य रही है। धर्म को रिलीज़न अथवा मजहब के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता, क्योंकि धर्म समग्र जीवन-पद्धत्ति से भी विशालतर अवधारणा है - यह एक ब्रह्मांडीय विचार है, यह वैविध्य में एकत्व देखने की अंतर्दृष्टि है। एक में विस्तार है तो दूसरे में सीमाबद्धता, एक व्यष्टि से लेकर समष्टि व परमेष्टि तक फैला हुआ है तो दूसरा अपने समुदाय विशेष तक सीमित एवं संकुचित है। मज़हब या रिलीजन एक ग्रंथ, एक पंथ, एक प्रतीक, एक पैगंबर को मानने के लिए बाध्य करता है। वह इनके अलावा अन्य किसी मत या सत्य को स्वीकार नहीं करता। जो-जो उनसे असहमत या भिन्न मत रखते हैं, उनके प्रति उनमें निषेध या अस्वीकार ही नहीं, अपितु कई बार घृणा, वैमनस्यता एवं शत्रुता तक पाई जाती है। भिन्न प्रतीकों-चिह्नों या पार्थक्य-बोध को ही वे अपनी अंतिम व एकमात्र पहचान बना लेते हैं। जबकि धर्म पार्थक्य में एकत्व ढूँढ़ने, चेतना-संवेदना को विस्तार देने तथा आंतरिक उन्नयन के प्रयास करता है। वह समरूपता का पोषक नहीं, विविधता, वैशिष्ट्य एवं चैतन्यता का संरक्षक है। वह किसी मत-विशेष या सत्ता को येन-केन-प्रकारेण प्रतिष्ठापित करने का बाह्य-आक्रामक अभियान नहीं, अपितु सत्य का सतत अनुसंधान है। वह करणीय-अकरणीय, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के सम्यक बोध या उत्तरदायित्व का दूसरा नाम है। यथा - राजा का धर्म, प्रजा का धर्म, पिता का धर्म, संतान का धर्म, गुरु का धर्म आदि। धर्म मूल प्रकृति या गुण के रूप में भी प्रयुक्त होता रहा है। जैसे अग्नि का धर्म उष्णता, जल का धर्म शीतलता, मनुष्य का धर्म परोपकारिता-परदुःखकातरता आदि। सनातन संस्कृति में धर्म एक व्यापक अवधारणा है, जो मानव मात्र के लिए है, किसी समूह या जाति विशेष के लिए नहीं। इसीलिए हर यज्ञ-अनुष्ठान के बाद सनातन संस्कृति में - धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो,

भारतीय ज्ञान-परंपरा में धर्म व सत्य में भेद नहीं, अंतर्निहित संबंध हैं। धर्म जहाँ परिणामोन्मुखी व निर्देशात्मक होता है, वहीं सत्य वस्तुनिष्ठ होता है। यदि सत्य इस प्रश्न का उत्तर देता है कि "क्या है" तो धर्म इस प्रश्न का उत्तर देता है कि "क्या होना चाहिए।" धर्म संविधान में निहित न्याय, निष्पक्षता और समानता के अंतर्निहित मूल्यों को मजबूत करता है। धर्म सुनिश्चित करता है कि वैधानिक निर्णय न केवल विधिसम्मत हों, अपितु नैतिक कसौटी पर भी खरे उतरने वाले हों। संविधान जहाँ देश के सर्वोच्च कानून के रूप में कार्य करता है, वहीं धर्म नैतिक दिशा-निर्देश प्रदान कर इसके अनुप्रयोग को बढ़ाता है।

प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो – जैसी मंगलकामनाएँ व्यक्त की जाती हैं। वहाँ किसी विशेष मत, पंथ, संप्रदाय एवं समुदाय आदि की जय-जयकार नहीं की जाती। गीता में भगवान श्रीकृष्ण भी यही कहते हैं कि ''जब-जब धर्म का नाश होता है, अधर्म बढ़ता है, मैं अवतरित होता हूँ।'' ध्यान रहे कि उन्होंने यह नहीं कहा कि जब-जब किसी मत या पंथ का नाश होता है, तब-तब उनका अवतरण होता है। धर्म धारण किया जाता है और मजहब एवं रिलीजन 'कबूल' या स्वीकार (एक्सेप्ट) किया जाता है। धर्म में सहयोग, समावेश, समन्वय, सह-अस्तित्व पर जोर रहता है। वह समरसता के सिद्धांत पर अवलंबित होता है। धर्म व्यक्ति, समाज, प्रकृति, परमात्मा व अखिल ब्रह्मांड के मध्य सेतु-समन्वय स्थापित करता है। वह सबके कल्याण एवं सत्य के सभी रूपों-मतों को स्वीकारने की बात करता है। धर्म कहता है- ''एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति'', (सत्य एक है, लेकिन इसकी अभिव्यक्तियाँ अलग-अलग हैं), आनो भद्र कृतवो यंतु विश्वतः (सभी दिशाओं से अच्छे विचार मेरे पास आएँ), उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (उदार चरित्र वाले लोग संपूर्ण वसुधा को ही अपना परिवार मानते हैं), सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भागभवेत (सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को दुःख का भागी न बनना पड़े)।'' मनु ने धर्म की व्याख्या करते हुए जो दस लक्षण बताए- ''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्?''- उसमें किसी के प्रति अस्वीकार या असहिष्णुता तो दूर, कहीं रंच मात्र संकीर्णता, संकुचितता या अनुदारता के संकेत तक नहीं। जबकि सभी अब्राहमिक मतों में उनके पैगंबरों की वाणी को ही अंतिम, अलौकिक और एकमात्र सत्य माना गया है, जबकि शेष को लौकिक व मिथ्या घोषित कर दिया गया है। इतना ही नहीं, अपितु वहाँ उस मत, मजहब, रिलीजन के भीतर भी नवीन ज्ञान व अनुभवजनित सत्य के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा गया। वहाँ मानव जाति के सोचने की सामर्थ्य व संभावनाओं पर ही सिरे से विराम या प्रतिबंध लगा दिया गया है। क्योंकि उनकी स्पष्ट घोषणा है कि सत्य अंतिम रूप से जाना या पाया जा चुका है। अब जो कुछ कहना या जानना है उसे इन 'पवित्र किताबों' के दायरे में ही सोचना या जानना होगा यानी भिन्न, मौलिक एवं स्वतंत्र सोच पर ही पूरी तरह से पाबंदी लगा दी गई है। इस श्रेष्ठता-ग्रंथि, भेद-बुद्धि, बंद दिमाग, संकुचित दायरे और आरोप-आक्रमण-विस्तार की नीति के कारण ही वह हरेक से संघर्षरत है। न केवल औरों के साथ बल्कि उनके अपने मत के भीतर भी अधिक शुद्ध, अधिक सच्चा व अधिक धार्मिक को लेकर लगातार एक संघर्ष देखने को मिलता है। इस्लाम की दारुल हरब, दारुल इस्लाम, जेहाद-जन्नत-दोजख-माले गनीमत जैसी संकीर्ण एवं विभाजनकारी धारणाओं तो ईसाईयत की यीशु के शरण में आने पर ही दुनिया के कल्याण की एकांगी-मनमानी मान्यताओं-व्याख्याओं ने स्थिति-परिस्थिति को और विकट, भयावह एवं संघर्षपूर्ण बना दिया है।

निष्कर्षत : यह कहा जा सकता है कि धर्म उन व्यवस्थाओं अथवा नियमों के समुच्चय का नाम है जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं मानव जीवन के विभिन्न अंगों को धारण किए रहता है। वहीं मजहब एवं रिलीजन का संबंध कुछ निश्चित आस्थाओं-मान्यताओं से होता है। जब तक कोई व्यक्ति उनको मानता है, वह उस 'रिलीजन' या 'मजहब' का सदस्य बना रहता है। ज्यों ही वह उन आस्थाओं-मान्यताओं को छोड़ता है, वह उनसे बहिष्कृत हो जाता है। वहीं धर्म केवल आस्थाओं पर आधारित नहीं होता। किसी धार्मिक आस्था में विश्वास न रखने वाला व्यक्ति भी धार्मिक अर्थात् सद्गुणी हो सकता है। 'सेक्युलर' का अनुवाद 'धर्मनिरपेक्ष' किये जाने के कारण बहुत-से भ्रम पैदा हुए हैं। धर्मनिरपेक्ष होने का अभिप्राय धर्म से उदासीन होना नहीं होता। भारतीय ज्ञान-परंपरा में धर्म का जो व्यापक अर्थ निहित है, क्या उससे कभी उदासीन रहा जा सकता है? हमें यह समझना होगा कि राजकीय समारोहों के उद्घाटन के अवसर पर दीप-प्रज्ज्वलन की परिपाटी या नए जहाज के जलावतरण की मंगलमय बेला में नारियल तोड़कर प्रसन्नता प्रकट करना अथवा नवनिर्माण से पूर्व भूमि-पूजन कर धरती माता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना किसी उपासना

पद्धति का भाग न होकर भारतीय संस्कृति और परंपरा का अंग है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अंधकार से प्रकाश की ओर – यह मानव की प्रगति-यात्रा का दिशानिर्देश है। चिरकाल से मनुष्य नन्हा-सा दीप जलाकर अंधकार की सत्ता को चुनौती देता आया है। हम आलोकधर्मी संस्कृति के वाहक हैं। अंधकार किसी भी समूह, समाज अथवा समुदाय का अभीष्ट नहीं हो सकता, न ही होना चाहिए। ज्ञात हो कि नए संसद-भवन के ऊपरी तल पर लगाए गए अशोक स्तंभ के अनावरण-अनुष्ठान के शुभ अवसर पर सबसे पहला मंत्र ''ॐ वसुंधराय विद्महे भूतधत्राय धीमहि तन्नो भूमिः प्रचोदयात्'' बोला गया। अब जो पृथ्वी सबका भरण-पोषण करती है, उससे आशीर्वाद की कामना भी भला संकीर्ण, अनुदार व सांप्रदायिक हो सकती है? क्या धरती, आकाश, सूरज, चाँद, नदी, पर्वत, जल और प्रकाश जैसे प्राकृतिक उपादानों का भी भला कोई पंथ या मजहब हो सकता है? बल्कि इनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, इनकी सबके लिए समान उपादेयता होती है। हाँ, विभिन्न सभ्यताओं द्वारा इन्हें देखने का एक भिन्न एवं विशेष दृष्टिकोण अवश्य होता है। जीवन और जगत को देखने का हम भारतीयों का भी अपना भिन्न एवं विशेष दृष्टिकोण है। उसे ही बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति कहकर संबोधित किया जाता है। इन दिनों भारतीय संस्कृति में मान्य एवं प्रचलित ऐसे तमाम प्रतीकों को लांछित या अपमानित करने का चलन-सा चल पड़ा है। इसीलिए केवल दीप-प्रज्वलन अथवा भूमि-पूजन ही क्यों, कभी सरस्वती पूजा, कभी गणेश-वंदना, कभी विद्यालयों में होने वाली प्रातः वंदना, कभी वैदिक मंत्र, कभी सूक्ति-श्लोक, कभी राष्ट्र-गान, कभी राष्ट्रगीत, कभी राष्ट्रीय ध्वज, कभी सेंगोल (राजदंड) तो कभी अशोक-स्तंभ

जैसे राष्ट्रीय प्रतीकों को लेकर भी अनावश्यक विवाद पैदा किया जाता है या जान-बूझकर इनकी उपेक्षा और अवमानना की जाती है। राष्ट्रीय प्रतीकों अथवा युगों से चली आ रही सांस्कृतिक परंपराओं को मज़हबी या कथित सेक्युलर चश्मे से देखना न तो न्यायसंगत है, न ही विवेकसम्मत। कई बार ऐसे भी दृष्टांत सामने आए हैं कि किसी शुभ मुहूर्त या आयोजन के उपलक्ष्य पर बनाई जाने वाली रंगोली, उकेरे गए मांगलिक चिह्न, शंख-ध्वनि, पुष्पार्चन आदि पर भी निरर्थक विवाद खड़े किए जाते हैं। यहाँ तक कि भारत माता की जय बोलने पर भी बहुतों को आपत्ति होती है। जबकि यह सहज स्वीकार्य सिद्धांत होना चाहिए कि मज़हब बदलने से पुरखे और संस्कृति नहीं बदलती। न्यायाधीश महानुभावों से लेकर हर प्रबुद्ध-साधारण को यह समझना होगा कि ये प्रतीक एवं परंपराएँ हमारे राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग हैं, न कि धार्मिक जीवन के। इनका संबंध पंथ विशेष की पूजा-पद्धत्तियों या मान्यताओं से न होकर राष्ट्र की अविच्छिन्न सांस्कृतिक परंपराओं से है, जीवन और जगत को देखने के चिरंतन दृष्टिकोण से है। इंडोनेशिया का उदाहरण हमारे सामने है। सर्वाधिक जनसंख्या वाला मुस्लिम देश होने के बावजूद उन्होंने अपनी संस्कृति नहीं बदली। उन्होंने अपनी सार्वजनिक संस्थाओं एवं उपक्रमों के नाम पूर्ववत व पारंपरिक ही रखे। उनकी विमान-सेवा का प्रतीक-चिह्न (लोगो) 'गरूड़' है। उनकी जलसेना का ध्येय वाक्य 'जलेष्वेव जयामहे' यानी 'जल में ही जीतना चाहिए' है। रामायण और रामलीला वहाँ अत्यंत लोकप्रिय हैं। एक इस्लामिक देश में यदि यह सब संभव है तो भारत में इन पर अनावश्यक विवाद क्यों?

स्मरण रहे कि भारतीय ज्ञान-परंपरा में धर्म व सत्य में भेद नहीं, अंतर्निहित संबंध हैं। धर्म जहाँ परिणामोन्मुखी व निर्देशात्मक होता है, वहीं सत्य वस्तुनिष्ठ होता है। यदि सत्य इस प्रश्न का उत्तर देता है कि ''क्या है'' तो धर्म इस प्रश्न का उत्तर देता है कि ''क्या होना चाहिए।'' धर्म संविधान में निहित न्याय, निष्पक्षता और समानता के अंतर्निहित मूल्यों को मजबूत करता है। धर्म सुनिश्चित करता है कि वैधानिक निर्णय न केवल विधिसम्मत हों, अपितु नैतिक कसौटी पर भी खरे उतरने वाले हों। संविधान जहाँ देश के सर्वोच्च कानून के रूप में कार्य करता है, वहीं धर्म नैतिक दिशा-निर्देश प्रदान कर इसके अनुप्रयोग को बढ़ाता है। यह कानूनी व्याख्या व निर्णय लेने में सहायक एवं मार्गदर्शक भूमिका निभाता है। अंततः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि 'धर्म व संविधान' तथा 'धर्म व सत्य' में परस्पर विरोध या टकराव न होकर सहयोग व पूरकता है। ❑

गीता में ईश्वर अस्तित्व एवं मानव स्वतन्त्रता

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
प्रवक्ता, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गंगापुर सिटी, राजस्थान

विश्व दर्शन में एक महत्त्वपूर्ण एवं परम शान्ति प्रदाता आध्यात्मिक ग्रन्थ के रूप में गीता 'महाभारत' जैसे विशाल ग्रन्थ का सार अंश है। यह हिन्दू धर्म की विद्वत्तापूर्ण विवेचनात्मक एवं पवित्रतम् धार्मिक कृति है। गीता, महाभारत के भीष्मपर्व का एक भाग है। इसमें धर्म, दर्शन एवं नीतिशास्त्र, तीनों का समन्वय है। परमानन्द की अवस्था अर्थात् मोक्ष के विषय में इसका संदेश बिल्कुल सरल है। गीता की रचना के पहले, धनवान व्यक्ति ही यज्ञ द्वारा देवताओं को खरीद सकता था और केवल सभ्य पुरुष ही ज्ञान के मार्ग का अनुसारण कर सकते थे। गीता ने भक्ति अर्थात् ईश्वर में श्रद्धा का भाव सबके लिए सुलभ कर दिया। इस प्रकार गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का समन्वय है।

गीता की जन्मकाल की परिस्थितियों के अध्ययन से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि व्यावहारिक शिक्षा देना ही गीता का मुख्य उपदेश रहा है। माया-मोह के कारण अर्जुन आत्मीय स्वजनों के वध की अपेक्षा भीख मांगकर खाना अच्छा समझते हैं। मोह और अज्ञान के कारण अर्जुन किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अपने वास्तविक स्वरूप को भी भूल जाते हैं। उन्हें अपने वास्तविक स्थिति का ज्ञान ही नहीं रहा। अत: अपनी वास्तविक स्थिति से परे परतंत्रता की अवस्था में मोहग्रस्त जैसी बातें करते हैं। ऐसी स्थिति में गीता का अमृततुल्य उपदेश देकर भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के मोह को समाप्त किया और उन्हें वास्तविक ज्ञान का प्रबोध कराया, जो उनका स्वतंत्र यथार्थ स्वरूप है। अपने उस स्वतंत्र रूप से अलग होकर ही वे परतंत्रता या बंधन की अनुभूति कर रहे थे, वह दु:ख एवं अज्ञान की स्थिति है तथा स्वतंत्रता परमानन्द की स्थिति है।

तात्विक रूप से आत्मा इच्छारहित तथा अकर्ता है। सब कर्त्तव्य केवल प्रकृति में है (गीता 13 / 29)। जितनी भी क्रियाएँ होती हैं, वे सबकी सब प्रकृति विभाग में ही होती है। प्रकृति के द्वारा होने वाली क्रियाओं को ही गीता में कहीं गुणों से होने वाली और कहीं इन्द्रियों से होने वाली क्रियाएँ कहा गया है। जैसे - सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं। गुणों के सिवाय अन्य कोई कर्ता है ही नहीं। तात्पर्य है कि क्रियामात्र प्रकृति जन्य ही है। अत: प्रकृति कभी किंचिन्मात्र अक्रिय नहीं होती और पुरुषों में कभी किंचिन्मात्र भी क्रिया नहीं होती। मोक्षानुकूल के विपरीत मानवीय इच्छा अज्ञानयुक्त होती है, जो बन्धन स्वरूप है। इस संदर्भ में तिलक का कहना है कि ''सच्ची स्वतंत्रता न बुद्धि की है और न मन की, वह केवल आत्मा की ही है।'' उसके इस स्वतंत्र स्वरूप की अनुभूति मोक्ष की अवस्था में होती है। कर्मक्षय के

बाद ही मोक्ष मिलता है। प्रश्न हो सकता है कि कर्मक्षय क्या है ? और कब होता है ? प्रत्युत्तर में सभी कर्मों के बन्धन से पूर्ण या नि:शेष मुक्ति पाना ही कर्मक्षय है। कर्मक्षय सभी जीवात्माओं के मुक्त होने के बाद ही संभव होता है। यद्यपि इस जगत् में नाम रूपात्मक कर्मों से छुटकारा नहीं मिल सकता, तथापि इन कर्मों के करने या न करने के लिए आत्मा पूर्ण स्वतंत्र है। अत: यदि इन्द्रियों पर आधिपत्य करके- कर्म के विषय में मनुष्य को जो आसक्ति होती है, केवल उसी का क्षय किया जाये तो ज्ञानी मनुष्य कर्म करके फल का भागी नहीं होता। गीता में भी कहा गया है सच्चा निष्कर्म इसी में है, कर्म का त्याग करने में नहीं (गीता 3 / 4)। मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने का है फल का नहीं (2/47)। इस प्रकार केवल कर्त्तव्य समझकर फल से रहित कर्म करना 'कर्मक्षय' करना है, क्योंकि पूर्णत: अकर्मी होना संभव नहीं है। देह यात्रा के लिए भी न्यूनतम कर्म करना अपरिहार्य है। गीता कर्म प्रवृत्ति की नैसर्गिकता पर बल देती है।

वास्तव में कर्म करना मनुष्य का सहज स्वभाव है और गीता यह समझती है कि इस तथ्य की उपेक्षा करने वाला कोई जीवन दर्शन कभी-भी रुचिकर एवं सर्वप्रिय नहीं हो सकता। गीता स्थान-स्थान पर यह स्वीकार करती है कि कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिए भी कर्म का परित्याग नहीं कर सकता। कोई मनुष्य कर्मों का प्रारम्भ न करने मात्र से ही नैष्कर्म्य को नहीं प्राप्त होता और कर्मों का परित्याग करने मात्र से मोक्ष को भी नहीं प्राप्त होता। गीता की दृष्टि में यदि कोई व्यक्ति कर्मों का परित्याग भी करना चाहे, तो उसके लिए ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि उसका शरीर एवं इन्द्रियाँ सदैव किसी न किसी कर्म में लगी रहती हैं। यह सम्पूर्ण लोक कर्म से बंधा है और प्रकृति के सत्त्व, रजस एवं तमस् गुण सब

भगवान् का अंश होने से जीव के पास भी भगवान् सिवाय कुछ भी नहीं है। अतः वह भी वास्तव में अकेला है। जीव भगवान् के सिवाय भूल से जिसको भी अपना मानता है, वह सब असत् है, त्याज्य है, मिलने और बिछुड़ने वाला है। तात्पर्य है कि भगवान् भी अकिंचन है और उनका अंश जीव भी। इसलिए भगवान् रूक्मिणी जी से कहते हैं कि "हम सदा के अकिंचन हैं और अकिंचन भक्तों से ही हम प्रेम करते हैं तथा वे हमारे से प्रेम करते हैं।"

प्राणियों को विवश करके कर्म कराते हैं। गीता अकर्म की अपेक्षा कर्म को श्रेष्ठ मानती है, क्योंकि कर्म के अभाव में शरीर का निर्वाह भी असंभव है। यदि सभी लोग कर्म करना बन्द कर दें तो सृष्टि चक्र ही रूक जायेगा। यह अकर्म को वैसे ही निन्दित समझती है, जैसे दुष्कर्म को। गीता के अनुसार, 'यद्यपि संन्यास (कर्मत्याग) और कर्म योग दोनों श्रेष्ठ हैं, तथापि कर्मयोग, कर्म संन्यास से श्रेष्ठ है।'' गीता पूर्णता की अवस्था में भी कर्म सम्पादन को आवश्यक मानती है। यह इस संदर्भ में कृष्ण और जनक का उदाहरण देती है। कृष्ण तो सदा पूर्ण थे और जनक ने भी पूर्णता प्राप्त कर लिया था। वे इसके बावजूद कर्मरत थे। गीता के अनुसार मुक्तात्माओं का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने अन्दर स्थित दैवी शक्ति को खोजने में दूसरों की सहायता करें, क्योंकि मानव जाति की सेवा ही ईश्वर की उपासना है। गीता का कर्मयोग निष्काम कर्मयोग है। गीता का आदेश निष्काम भाव से कर्म करने के लिए है। निष्कार्म कर्मयोग का अर्थ है कि हम कर्म को सदैव साध्य के रूप में देखें, उसे कभी साधन के रूप में न ग्रहण करें। हम कर्म तो करें, किन्तु कर्मफल में आसक्ति न रखें। हम कर्म करने से पहले तथा कर्म करते समय भी उससे प्राप्त होने वाले के विचार को मन में कदापि न लायें। गीता के विचार में दो दृष्टियों से कर्म किये जाते हैं- सकाम भाव से (फल आकांक्षा के विचार से) और निष्काम भाव से (फल आकांक्षा के विचार का परित्याग करके)। गीता के अनुसार जो कर्म फलाकांक्षा की भावना से किये जाते हैं। वे बंधनकारी होते हैं और जो कर्म फलाकांक्षा की भावना का परित्याग करके किये जाते हैं, वे बन्धनकारी न होकर मोक्ष प्रदायक होते हैं। वास्तव में सकामना बन्धन है और निष्कामना मोक्ष है। गीता सकाम भाव से किये जाने वाले कर्मों के दुष्परिणामों को भी रेखांकित करती है। इसके अनुसार सकाम होकर कर्म करने से कर्म में आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से आकांक्षा जन्म लेती हैं। आकांक्षा से क्रोध और क्रोध से मोह उत्पन्न होता है। मोह से स्मृति उत्पन्न होती है। स्मृति नाश से बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो जाता है। अत: निष्काम कर्म करने वाला मनुष्य ही सच्चे अर्थों में विरक्त एवं स्थितप्रज्ञ हैं। उसका प्रत्येक कर्म ईश्वरार्पण से ही होता है। वह प्रतिफल ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति करता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि वह अनन्यभाव से अन्त समय में मेरा ही स्मरण करने पर मुक्त हो जाता है।

स्पष्ट है कि मुक्ति प्राप्ति के लिए कर्म करना अनिवार्य है। कर्म का अर्थ ऐच्छिक कर्म या आचरण है। चूँकि ईश्वर स्वयं कर्मठ है। अत: उसकी प्राप्ति हेतु कर्म करना आवश्यक है। आत्म-साक्षात्कार का साधन कर्म को ही माना गया है। गीता की रचना के पहले भी भारत में चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग एवं ध्यानमार्ग साधन के रूप में प्रचलित थे। गीता में इन मार्गों

का अपूर्व संगतिपूर्ण समन्वय है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति रूपी त्रिवेणी की पवित्र धाराएँ तत्व जिज्ञासुओं की पिपासा को शान्त करती हुई ईश्वर की ओर अग्रसर हो रही हैं। अस्तु, इन तीनों मार्गों से युक्त होकर अनासक्त भाव से कर्म करते रहने पर परमात्मा का साक्षात्कार होता है। मुक्ति प्राप्ति की प्रक्रिया में कर्म को अपरिहार्य बताने के कारण ही गीता को कर्मयोग शास्त्र भी कहा गया है। आधुनिक युग में लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी और श्रीमती ऐनी बेसेन्ट आदि विचारकों ने कर्मयोग, विशेषत: निष्काम कर्म योग को ही गीता की मुख्य शिक्षा स्वीकार करते हैं। गीता में अनासक्ति होकर कर्म करना ही कर्म करने का सही तरीका है। इस संदर्भ में एस.एन. दास गुप्ता का कथन समीचीन है कि ''मनुष्य को स्वकर्मों का पाप तभी लगता है, जब वह स्वार्थबुद्धि से प्रेरित होकर कोई कार्य करता है।'' अनासक्ति भाव से कार्य करने वाले मानव को पाप का भागी नहीं होना पड़ता है, क्योंकि आसक्ति या कामना के वशीभूत होकर ही व्यक्ति बंधनग्रस्त होता है। परिणामत: बार-बार आवागमन के चक्कर में पड़कर दुष्कर्म ही करता है। कर्मच्युत् होने पर उसे पुन: नवीन शरीर ग्रहण करना पड़ता है। यह सहज प्रश्न उठता है कि यदि कर्म करता हुआ मनुष्य बीच में ही कर्त्तव्यच्युत् हो जाता है, तो क्या उसे पूर्ण सिद्धि कभी नहीं प्राप्त होती ? यही शंका अर्जुन को भी हुई थी, जिसका समाधान श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार किया है, आत्मा के अमर होने के कारण उसके संस्कार अगले जन्म में भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं तथा यह योगभ्रष्ट पुरुष अगले जन्म में भी अपना कार्य वहीं से आरम्भ करता है, जहाँ से उसके कर्म का अभ्यास छूट गया था। श्रीकृष्ण गीता में इस संदर्भ में कहते हैं कि ''अनेक जन्मों के पश्चात् वह पूर्ण सिद्धि को प्राप्त करता है। अन्त समय में उसे मोक्ष मिल जाता है।'' तात्पर्य यह है कि उसके कर्म का फल कभी विनष्ट नहीं होता है। उसका फल अवश्य मिलता है और अन्त में कर्मयोग का पालन करते हुए आत्मा ब्रह्म से ऐक्य की अनुभूति कर लेती है। अत: कर्मयोग के अभ्यास से पूर्ण ज्ञान के प्राप्त होने पर प्रकृति से बंधन या पराधीनता छूट जाती है तथा आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेती है। गीता-वर्णित इस ब्राह्मी स्थिति में अशुभ एवं पाप का कोई अस्तित्व नहीं होता, क्योंकि अशुभ एवं पाप का विचार अज्ञानवश हमारे सीमित विचारों का ही परिणाम है। अज्ञान के कारण ही व्यक्ति के मन में पाप-पुण्य का विचार आता है। लेकिन ब्राह्मी स्थिति या स्थितप्रज्ञ में व्यक्ति के सभी कार्य सहज रूप से शुभ एवं लोक-कल्याण हेतु ही सम्पन्न होते हैं। स्थितप्रज्ञ में सभी कामनाओं एवं वासनाओं का परित्याग हो जाता है। इसमें शुद्ध एवं अशुद्ध दोनों प्रकार की वासनाओं का त्याग शामिल है। सत्त्व की गणना शुद्ध वर्ग में आती है, स्थितप्रज्ञ दोनों प्रकार की वासनाओं एवं कामनाओं से रहित होता है। वह सदैव अपने में अपने से ही सन्तुष्ट रहता है। सात्त्विक वासनाओं का त्याग ईश्वर भक्ति से ही संभव है। सच्ची भक्ति होने पर निरन्तर परमानन्द में डूबा रहता है। गीता का स्थितप्रज्ञ आदर्श पुरुष है। उसमें ज्ञान, भक्ति एवं कर्म तीनों का समन्वय होता है। वह अनासक्त कार्य करता है। अत: वह कर्मयोगी है। वह अपना मन, बुद्धि ईश्वर में लगाये रहता है और सर्वत्र ईश्वर को अर्पित कर देता है। अत: वह भक्त है। वह सुख और दु:ख में समभाव से आचरण करता है, अत: ज्ञानी है। वस्तुत: यह वेदान्त का जीवन्मुक्त है। हम उसे बौद्ध दर्शन का बोधिसत्व भी कह सकते हैं। उसकी प्रज्ञा नित्य ब्रह्म में प्रतिष्ठित रहती है। गीता में निरन्तर इस बात पर बल दिया है कि, त्याग का तात्पर्य कर्म त्याग नहीं है, अपितु कर्मफल त्याग की मनोवृत्ति है। इसकी स्पष्टता में प्रो० हिरियन्ना भी कहते हैं, ''गीता कर्म में त्याग का उपदेश देती है, कर्म के त्याग का नहीं।'' फलाकांक्षारहित इन्द्रियों को कर्म करने का आदेश है। फलाकांक्षारहित कर्म से मानव का अन्त:करण धीरे-धीरे शुद्ध होकर ईश्वर से परिपूर्ण हो जाता है। यह ऐसा कर्म है, जो किसी स्वार्थ बुद्धि से चालित नहीं होता है। ऐसे कर्म में वासनाओं का आधिपत्य धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और मनुष्य उस ईश्वर के समीप पहुँचकर उसकी अनुभूति करता है। उसे असाधारण अनुभूति की प्राप्ति होती है। यह असाधारण अनुभूति ही उसका दर्शन है, जिसके लिए दिव्य चक्षु की आवश्यकता होती है, क्योंकि बाह्य

(साधारण चक्षु) नेत्रों से उसका दर्शन दुर्लभ है । श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उस दिव्य स्वरूप के दर्शन के लिए उन्हें दिव्य नेत्र प्रदान किये थे और यह दिव्यस्वरूप का दर्शन तभी हो पाता है, जब हममें उसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो। प्रेम ही ऐसा भाव है, जिसमें 'मैं' और 'तेरा' का भाव समाप्त हो जाता है। इसमें वह अपने और पराये का भेद समाप्त कर ईश्वर की इच्छा के रूप में ही जीने की आकांक्षा करता है। उसके प्रेम में भक्ति अर्थात् ईश्वर सेवा का भाव प्रमुख होता है। अत: ईश्वर के प्रति श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक अपना सर्वस्व उसे अर्पण कर देता है तथा उसकी शरण में चले जाना ही भक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। ईश्वर की कृपा से ही मनुष्य को उसकी अनन्य भक्ति की प्राप्ति होती है, जिसका कभी विनाश नहीं होता है। जब एक बार मनुष्य भक्ति में रम जाता है, तब कभी न कभी उसे परमेश्वर का दर्शन अवश्य प्राप्त होता है, वह यह अनुभूति करने लगता है कि, सब कुछ वासुदेव रूप ही है, इसी ज्ञान में उसे मुक्ति मिल जाती है। अर्थात् साधक जब यह अनुभव करता है कि सब कुछ परमात्मा ही है, तब उसे असली शरणागति मिल जाती है। जैसे- खेत में पहले भी गेहूँ बोया गया था और अन्त में गेहूँ ही निकलेगा, पर बीच में हरी-हरी घास दिखने पर भी वह 'गेहूँ की खेती' कहलाती है। उसे गाय खा जाये तो किसान कहता है कि गाय हमारा गेहूँ खा गयी, जबकि गाय ने गेहूँ का एक दाना भी नहीं खाया। इसी प्रकार सृष्टि के पहले भी परमात्मा थे और अन्त में भी परमात्मा ही रहेंगे, पर बीच में परमात्मा न दिखने पर भी सब कुछ परमात्मा ही है। जैसे- गेहूँ से उत्पन्न खेती भी गेहूँ ही है, ऐसे ही परमात्मा से उत्पन्न सृष्टि भी परमात्मा ही है। परमात्मा ने कही सामान मँगवाकर सृष्टि नहीं बनवायी, प्रत्युत वे खुद ही सृष्टि रूप बन गये। जैसे कि जिसके भीतर प्यास होती है, उसे ही जल दिखता है। प्यास न हो तो जल सामने रहते हुए भी दिखता नहीं। ऐसे ही जिसके अन्दर परमात्मा की प्यास (लालसा) है, उसे परमात्मा दिखते हैं और जिसके भीतर संसार की प्यास है, उसे संसार दिखता है। परमात्मा की प्यास हो, तो संसार लुप्त हो जाता है और संसार की प्यास हो, तो परमात्मा लुप्त हो जाता है। तात्पर्य है कि संसार की प्यास होने से संसार न होते हुए भी मृगमरीचिका की तरह दिखने लग जाता है और परमात्मा की प्यास होने से परमात्मा न दिखने पर भी दिखने लग जाता है। परमात्मा की प्यास जाग्रत होने पर भक्त को भूतकाल का चिन्तन नहीं होता, भविष्य की आशा नहीं रहती और वर्तमान में उसे प्राप्त किये बिना चैन नहीं पड़ता।

सब कुछ एक भगवान् ही है (गीता 9 / 19) एक भगवान के सिवाय कुछ भी न होने से भगवान् अकेले हैं, उनके पास (उनसे भिन्न) कुछ भी नहीं है। भगवान् का अंश होने से जीव के पास भी भगवान् सिवाय कुछ भी नहीं है। अत: वह भी वास्तव में अकेला है। जीव भगवान् के सिवाय भूल से जिसको भी अपना मानता है, वह सब असत् है, त्याज्य है, मिलने और बिछुड़ने वाला है। तात्पर्य है कि भगवान् भी अकिंचन है और उनका अंश जीव भी। इसलिए भगवान् रूक्मिणी जी से कहते हैं कि ''हम सदा के अकिंचन हैं और अकिंचन भक्तों से ही हम प्रेम करते हैं तथा वे हमारे से प्रेम करते हैं।'' जब साधक संसार में शरीरादि किसी भी वस्तु-व्यक्ति को अपना तथा अपने लिए नहीं मानता है, तब वह अकिंचन होकर भगवान् का प्रेमी हो जाता है। श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है कि, मुझमें सब गुंथा हुआ है। अर्थात् जैसे सूत की मणियाँ सूत के धागे में पिरोयी हुई हों तो उनमें सूत के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है, ऐसे ही मणिरूप अपरा प्रकृति और धागरूप परा प्रकृति-दोनों एक भगवान् की परिपूर्ण हैं या एक भगवान् के सिवाय कुछ नहीं है। तात्त्विक दृष्टि से देखें तो न धागा है, न मणियाँ हैं, प्रत्युत एक सूत (रुई) ही हैं। इसी तरह न परा है, न अपरा है, प्रत्युत एक परमात्मा ही है। यह सब मेरी माया है (गीता 7/14), मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है (गीता 7/ 7) मुझे शत्रु एवं मित्र दोनों बराबर हैं (गीता 9 / 29) । अत: जो जिस भाव से पूजता है, उसे मैं उसी भाव से मिलता हूँ। देव भाव का ही भूखा होता होता है। अत: जो प्रेमपूर्वक मेरी भक्ति करते हैं, उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त होता है। जिन्हें पूर्ण आत्मज्ञान हुआ है, उन्हें ब्रह्म निर्वाण रूपी मोक्ष स्वयं मिल जाता है। 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' जिसने ब्रह्म को जाना, वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है। मनुष्य के आत्मा के ज्ञान की दृष्टि से जो यह पूर्णावस्था होती है, उसी को ब्रह्मभूत या ब्राह्मीस्थिति कहते हैं। जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहंतारहित होकर आचरण करता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है। अर्थात् जब मनुष्य कामना, स्पृहा, ममता और अहंता से छूट जाता है, तब उसे अपने भीतर नित्य निरन्तर स्थित रहने वाली शान्ति का अनुभव हो जाता है। मूल में अहंता ही मुख्य है। सबका त्याग करने पर भी अहंता शेष रह जाती है, पर अहंता का त्याग होने पर सबका त्याग हो जाता है। अहंता से राग, राग से आसक्ति, आसक्ति से ममता, ममता से कामना तथा कामना से फिर अनेक प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है। साधक के लिए पहले ममता का त्याग करना सुगम पड़ता है। ममता का त्याग होने पर कामना, स्पृहा और अहंता का त्याग करने की सामर्थ्य आ जाती है। वास्तव में हम कामना, स्पृहा, ममता, और अहंता से रहित हैं। यदि हम इनसे रहित न होते तो कभी इनका त्याग न कर पाते और भगवान् भी इनको त्यागने की बात नहीं करते। सुषुप्ति में अहंता आदि के अभाव का अनुभव सबको होता है, पर अपने अभाव का अनुभव कभी किसी को नहीं होता। ❑

भारतीय संस्कृति के परम आदर्श : श्रीराम

उमेश कुमार चौरसिया
सहायक निदेशक,
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड
राजस्थान

महर्षि अरविन्द कहते हैं कि श्रीराम का अवतार किसी आध्यात्मिक साम्राज्य की स्थापना के लिए नहीं हुआ था। राम परमात्मा थे, जिन्होंने मानवीय मन:स्थिति के आधार को स्वीकार किया और उसे शोभामय सम्मान दिया। माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर कहते हैं कि संपूर्ण भारतीय समाज के लिए समान आदर्श के रूप में भगवान् रामचन्द्र को उत्तर से लेकर दक्षिण तक सब लोगों ने स्वीकार किया है। मनुष्य के जीवन में आने वाले सभी संबंधों को पूर्ण एवं उत्तम रूप से निभाने की शिक्षा देने वाला प्रभु रामचन्द्र के चरित्र के समान दूसरा कोई चरित्र नहीं है। आदिकवि ने कहा है कि वे गांभीर्य में समुद्र के समान और धैर्य में हिमाचल के समान हैं। वीर विनायक दामोदर सावरकर ने कहा है कि श्रीराम हिंदू स्वाभिमान के सबसे बड़े प्रतीक हैं। इसीलिए मैंने इंग्लैंड में आयोजित श्रीराम जन्मोत्सव समारोह में कहा था - 'अगर मैं इस देश का अंग्रेज डिक्टेटर होता तो सबसे पहले महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण को जब्त करने के आदेश जारी करता। क्यों? इसलिए कि जब तक यह महान् क्रांतिकारी ग्रंथ भारतवासी हिंदुओं के हाथों में रहेगा, तब तक हिंदू न किसी दूसरे ईश्वर या सम्राट के आगे सिर झुका सकते हैं और न ही उनकी नस्ल का कभी अंत हो सकता है।

स्वामी अवधेशानन्द गिरि कहते हैं कि पूर्ण परात्पर ब्रह्म मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम भारतीय संस्कृति के उच्चतम प्रतिमान हैं। राम जैसा शील-सौंदर्य, औदार्य एवं मर्यादा अन्यत्र कहीं नहीं दिखती। प्रभु श्रीराम भारत के प्रभात के प्रथम स्वर हैं। इस दृष्टि से भगवान श्रीराम के चरित्र के श्रवण, मनन और लेखन का अर्थ अंत:करण में रामत्व के अवतरण से है। जीवन में रामत्व की संप्राप्ति अर्थात् सद्प्रवृत्तियों का आरोहण। भारत चरित्र का उपासक देश है, जहाँ धनबल, बाहुबल के आधार पर कभी कोई बड़ा नहीं बन सका। संभवत: इसीलिए उच्चकुल में जनमें रावण को हम राक्षस और मांसभक्षी जटायु को महात्मा कहकर संबोधित करते हैं। जो सत्कर्म परायण है अथवा जिसके पास चरित्रबल है, वही श्रेष्ठ है।

स्वामी विवेकानन्द कैलिफोर्निया के पंसाडेना नामक स्थान में 'शेक्सपीयर-क्लब' में 31 जनवरी 1900 को दिये गए भाषण में रामकथा सुनाते हुए कहते हैं कि भारतवर्ष में अयोध्या नाम की एक प्राचीन नगरी थी, जो आज भी विद्यमान है। भारत के मानचित्र में तुमने देखा होगा, जिस प्रान्त में इस नगरी का स्थान निर्देश किया गया है, उसे आज भी अवध ही कहते हैं। यही प्राचीन अयोध्या थी। वहाँ पुरातन काल में राजा दशरथ राज्य करते थे। उन दिनों आर्यों को यह ज्ञात नहीं था कि इन सघन वन-कान्तारों में कौन निवास करते थे। वे इन वन्य जातियों को 'वानर' कहते थे, और इन तथाकथित 'वानरों' में या असभ्य वन जातियों में जो अत्यन्त दृढ़ और असाधारण बलसम्पन्न क्रूर प्रवृति के थे उन्हें वे दैत्य या राक्षस कहते थे।

भारतीयों के मतानुसार वे ईश्वर के सातवें अवतार हैं। भागवत के अनुसार अवतारों की संख्या असंख्य है, इनमें से राम और कृष्ण ही भारत में विशेष भाव से पूजे जाते हैं। प्राचीन वीर, युगों के आदर्शस्वरूप, सत्यपरायणता और समग्र नैतिकता की साकार मूर्तिस्वरूप, आदर्श तनय, आदर्श पति, आदर्श पिता, सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान ऋषि वाल्मीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

महाभारत और रामायण में ऋषि वाल्मीकि रचित महाकाव्य रामायण प्राचीनतर है। रामायण भारत का महान आदि काव्य है। राम और सीता भारतीय राष्ट्र के आदर्श हैं। भारतीय राष्ट्र और समाज के लिए सीता सहिष्णुता के उच्चतम आदर्श के रूप में हैं। पश्चिम कहता है 'कर्म करो -कर्म द्वारा अपनी शक्ति दिखाओ', भारत कहता है 'सहिष्णुता द्वारा अपनी शक्ति दिखाओं।' मनुष्य कितने अधिक भौतिक पदार्थों का स्वामी बन सकता है, इस समस्या की पूर्ति पश्चिम ने की है, किन्तु मनुष्य कितना कम रखकर जीवन श्रेष्ठ बना सकता है, इसका उत्तर भारत ने दिया है। भारत में जो कुछ पवित्र है, विशुद्ध है, जो कुछ पावन

है, उस सबका बोध एकमात्र 'सीता' शब्द से हो जाता है।

श्रीराम के अस्तित्व और रामकथा की प्राचीनता के स्रोत पर विचार रखते हुए प्रसिद्ध साहित्यसेवी रामधारी सिंह दिनकर 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक में लिखते हैं कि वेद में रामकथा के अनेक पात्रों का उल्लेख मिलता है। इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, अश्वपति, कैकेयी, जनक और सीता इनके नाम वेद और वैदिक साहित्य में अनेक बार आए हैं। रामकथा के जिन पात्रों के नाम वेद में मिलते हैं, वे निश्चित रूप से रामकथा के पात्र हैं या नहीं, इस विषय में सन्देह रखते हुए भी यह मानने में कोई बड़ी बाधा नहीं दीखती है कि रामकथा ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी, रामेश्वरम्, ये सभी स्थान अनन्त काल से रामकथा से सम्पृक्त माने जाते रहे हैं। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि दाशरथि राम सचमुच जनमे थे और उनके चरित्र पर ही वाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की? इस संभावना का खंडन यह कहने से भी नहीं होता कि वाल्मीकि ने आदि रामायण में केवल अयोध्या कांड से युद्ध कांड तक की कथा लिखी थी, बाल कांड और उत्तर कांड बाद में अन्य कवियों ने मिलाए।

भारतीय परम्परा एक स्वर से वाल्मीकि को आदिकवि मानती आई है और यहाँ के लोगों का विश्वास है कि रामावतार त्रेता युग में हुआ था। इस मान्यता की पुष्टि इस बात से होती है कि महाभारत में रामायण की कथा आती है, किन्तु रामायण में महाभारत के किसी भी पात्र का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार, बौद्ध ग्रंथ तो रामकथा का उल्लेख करते हैं, किन्तु रामायण में बुद्ध का उल्लेख नहीं है।

भारत में संस्कृति समन्वय की जो प्रक्रिया चल रही थी, ये दोनों काव्य (रामायण और महाभारत) उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। रामायण की रचना तीन कथाओं को लेकर पूर्ण हुई। पहली कथा जो अयोध्या के राजमहल की है, जो

भारतीयों के मतानुसार वे ईश्वर के सातवें अवतार हैं। भागवत के अनुसार अवतारों की संख्या असंख्य है, इनमें से राम और कृष्ण ही भारत में विशेष भाव से पूजे जाते हैं। प्राचीन वीर, युगों के आदर्शस्वरूप, सत्यपरायणता और समग्र नैतिकता की साकार मूर्तिस्वरूप, आदर्श तनय, आदर्श पति, आदर्श पिता, सर्वापरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान ऋषि वाल्मीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

पूर्वी भारत में प्रचलित रही होगी। दूसरी रावण की जो दक्षिण में और तीसरी किष्किन्धा के वानरों की जो वन्य जातियों में प्रचलित रही होगी। आदिकवि ने तीनों को जोड़कर रामायण की रचना की। किन्तु, उससे भी अधिक संभव यह है कि राम सचमुच ही ऐतिहासिक पुरुष थे और सचमुच। ही उन्होंने किसी वानर जाति की सहायता से लंका पर विजय पाई थी। हाल में यह अनुमान भी चलने लगा है कि हनुमान नाम एक द्रविड़ शब्द 'आणमन्दि' से निकला है, जिसका अर्थ 'नर-कपि' है। यहाँ फिर यह बात उल्लेखनीय हो जाती है कि ऋग्वेद में भी 'वृषाकपि' का नाम आया है। वानरों और राक्षसों के विषय में भी अब यह अनुमान प्राय: ग्राह्य हो चला है कि ये लोग प्राचीन विन्ध्य प्रदेश और दक्षिण भारत की आदिवासी आर्येतर जातियों के सदस्य थे, या तो उनके मुख वानरों के समान थे अथवा उनकी ध्वजाओं पर वानरों और भालुओं के निशान रहे होंगे।

राम-मत के विषय में यह बात भी है कि रामकथा का विकास और प्रसार पहले हुआ, राम विष्णु के अवतार बाद में माने गए। रामकथा के विकास पर रेवरेंड फादर कामिल बुल्के ने जो विद्वतापूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया है, उसके अनुसार वेद में रामकथा विषयक पात्रों के सारे उल्लेख स्फुट और स्वतन्त्र हैं। रामकथा संबंधी आख्यान-काव्यों की वास्तविक रचना वैदिक काल के बाद इक्ष्वाकुवंश के राजाओं के सूतों ने आरंभ की। इन्हीं आख्यान-काव्यों के आधार पर वाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की।

भारत में संस्कृतियों का जो विराट् समन्वय हुआ है, रामकथा उसका अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीक है। सर्वप्रथम तो यह कि इस कथा से भारत की भौगोलिक एकता ध्वनित होती है। एक ही कथासूत्र में अयोध्या, किष्किन्धा और लंका, तीनों के बँध जाने के कारण सारा देश एक दीखता है। दूसरे, इस कथा पर भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में रामायणों की रचना हुई, जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय रही हैं तथा जिनके प्रचार के कारण भारतीय संस्कृति की एकरूपता में बहुत वृद्धि हुई है। इससे यह बात सरलता से सिद्ध हो जाती है कि रामकथा ने इस देश की संस्कृति की कितनी गंभीर सेवा की है और कैसे इस कथा को लेकर लगभग सारा देश एक आदर्श की ओर उन्मुख रहा है। रामकथा की दूसरी विशेषता यह है कि इसके माध्यम से शैव और वैष्णव मतों का विभेद दूर किया गया। यह संभव है कि आदि रामायण पर शैव मत का कोई प्रभाव नहीं रहा हो, किन्तु आगे चलकर रामकथा शिव की भक्ति से एकाकार होती गई। युद्धारंभ से पूर्व राम का रामेश्वरम में शिव की प्रतिष्ठा करना तथा हनुमान को एकादश रूद्र अवतार माना जाना यह बतलाता है कि वैष्णव व शैव मतों की दूरी को आदिकवि कम करना चाहते थे और यह उचित भी था। ❑

शैक्षिक मंथन (मासिक)
प्रकाशन तिथि : 1 अप्रैल 2024
प्रेषण दिनांक : 7 अप्रैल 2024, सी.एस.ओ. गाँधीनगर, जयपुर
पंजीयन क्र. : आर.एन.आई. राजबिल/2008/26080
डाक पंजीयन क्र. : आई.आर./जयपुर सिटी/434/2024-26

भारतीय नववर्ष

विक्रम संवत् 2081 की हार्दिक शुभकामनाएँ

कृपया अवितरित होने पर लौटावें :
प्रकाशकीय कार्यालय
शैक्षिक मंथन
82, पटेल कॉलोनी,
सरदार पटेल मार्ग, जयपुर - 302 001

प्रकाशक, मुद्रक - महेन्द्र कपूर, स्वत्वाधिकारी
शैक्षिक मंथन संस्थान द्वारा प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस,
प्लॉट नं. 12, रामनगर, सोडाला, जयपुर से मुद्रित।
सम्पादक - डॉ. शिवशरण कौशिक